



भारतकालय, पुस्तकालय, पुस्तकालय
विराट ।

१५
२४

॥ ओ३म ॥

सन्ध्या-रहस्य

लेखक

श्री चमूपति जी.बी. ए.

प्रकाशक

राजपाल-प्रबन्धकर्ता

आर्य पुस्तकालय, लाहौर।

COMPILED

All rights Reserved



28330



प्रथमवार १०००]

[मूल्य]

人
子



ओ३म् २८३३०
२५.२.२०

क्रतोस्मर क्रियेस्मरकृत स्मर । यजु० अ० ४० मं० १६

सन्ध्या-रहस्य

अर्थात्

संध्या से शारीरिक, सामाजिक तथा आत्मिक उन्नति; संध्या मंत्रों के अन्वय, शब्दार्थ और गूढ़ रहस्य, संध्या में शिक्षा बन्धनादि क्रियाओं के अभिप्राय, संध्या मंत्रों के क्रम की उत्तमता पर अपूर्व प्रकाश इत्यादि ।

लेखक-

चमूपति वी. ए. हरिवार

भू० पू० सहायक मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल-मुलतान ।

प्रकाशक-



28330

जपाल-मैनेजर

आर्य-पुस्तकालय, लाहौर ।

कमरशल प्रेस अनारकली लाहौर

प्रथमवार १०००] १९७४ वि० (१९१७ई.) [मूल्य ३]

प्रारम्भिक वचन

— ८१ —

आर्य-जनिता ने पूज्यपाद श्री स्वामी सत्यानन्दजी महाराज की सन्ध्या-योग का जिस प्रेम और धर्मभाव से स्वागत किया है, उस को देख कर मुझे साहस हुआ है कि मैं अपने सन्मान के योग्य भाई श्रीमान् महाशय चमूपातिजी बी. ए. की इस अत्यन्त उप-योगी पुस्तक को छाप कर आर्य पुरुषों की भेंट करूं।

सन्ध्या पर इस समय तक जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं, यह पुस्तक उन में विलक्षण है। इस की उपयोग्यता और विलक्षणता का परिचय साधारण दृष्टि डालने से ही मिल सकता है। आर्य समाज में बाल की खाल उतारने वाले और तर्क देवता को उपासक बहुत हैं। यह पुस्तक उन के लिये विशेष तौर पर पढ़ने योग्य है, स्कूलों और गुरुकुलों के विद्यार्थियों के लिये तो इस का निर्माण ही हुआ है और इसीलिये इस का समर्पण भी ब्रह्मचारियों के नाम पर किया गया है। इसलिये आशा है कि ब्रह्मचारी और विद्यार्थी गण भी इस का हार्दिक सत्कार करेंगे। अर्थात् आर्य-जनिता का प्रत्येक भाग इसी हार्दिक भाव से इसका स्वागत करेगा जिससे प्रेरित होकर लेखक महोदय ने पुस्तक को रचा है।

राजपाल (उप-सम्पादक प्रकाश)

प्रकाशक

विषय सूची ।

15-

१-समर्पण	...	२५.	५
२-गस्तावना	...	...	७

भूमिका

३-सच्चा स्थायी वीमा	...	...	६
४-आत्मिक वही की पड़ताल	...	...	१२
५-शक्तिमान् के स्मरण से शक्ति	...	...	१३
६-दैनिक ब्रह्मचर्य तथा दैनिकसन्ध्या	...	...	१५
७-अपूर्व डाइरी	...	...	१८
८-जी नहीं मानता	...	...	२१
९-बहुरूपी सन्ध्या	...	...	२६
१०-टीका	...	...	३३

(सन्ध्या-रहस्य)

११-शिखाबन्धन	...	...	३५
१२-गुरुमन्त्र	...	...	३७
१३-आचमन मन्त्र	...	...	४१
१४-आचमन क्यों करें	...	...	४४
१५-भौतिक अर्थ	...	...	४६
१६-इन्द्रिय-स्पर्श	...	...	४७

१७-मार्जन मन्त्र ...	...	५६
१८-मार्जन का अभिप्राय ...	...	६१
१९-प्रणायाम मन्त्र...	...	६२
२०-अग्न्यर्घ्य मन्त्र...	...	६६
२१-आचमन दूसरी बार ...	...	७३
२२-मनसा-परिक्रमा ...	...	७४
२३-उपस्थान मन्त्र (१) ...	...	८०
२४-उपस्थान मन्त्र (२) ...	...	८४
२५-उपस्थान मन्त्र (३) ...	...	८५
२६-उपस्थान मन्त्र (४) ...	...	८८
२७-आचमन तीसरी बार ...	...	९०
२८-गुरुमन्त्र दूसरी बार ...	...	९२
२९-नमस्कार मन्त्र...	...	९३

आचार्य-कोष—पं० रामचरण शास्त्री प्रोफ़ेसर कृत
भाग (१) सरल संस्कृत व्याकरण तथा अनुवाद के नियम॥)
भाग (२) हिन्दी से संस्कृत डिक्शनेरी । मूल्य १।)
दोनों भाग कालिजों और स्कूलों के लड़कों के लिये उपयोगी हैं
मिलने के पते—ए. पी. भण्डार भावलपुर (स्टेट)
तथा

आर्य-पुस्तकालय, लाहौर ।

समर्पण

प्रिय ब्रह्मचारी धर्मदेव, ब्र० आत्मदेव, ब्र० जगन्नाथ,
ब्र० नित्यानन्द, ब्र० पुरुषोत्तम, ब्र० सुरेन्द्र, ब्र० पृथिवीराज
के प्रति (जव वे अधिकारी परीक्षा देने काङ्गड़ी जाते हैं) ।

सम्बोधन



परमप्रिय ब्रह्मचारियो ! नमस्ते !



य

झ-शाला में यज्ञ होरहा था । पथिक
पास से गुज़रा । वेद मन्त्रों की मधुर-ध्वनि
उस के कानों में पड़ी । मुग्ध हो आगे का
मार्ग छोड़ा और यज्ञ-शाला की ओर गया ।
“ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं” इत्यादि पढ़ा जा

चुका था । याज्ञिक खड़े “सर्वं वै पूर्णं ५ स्वाहा” कहने को थे ।
पथिक ने भी तीन बार इन शब्दों का उच्चारण किया और
शान्ति-पाठ करके लौट आया । यह ज्ञात नहीं कि उस ने अपने
हाथ से पूर्णाहुति दी या नहीं । उस से पूछते हैं, हवन कर
चुका ? “हां” कहे तो अस्त्य है ।

* उस भाषण का सार जो लेखक ने १७ भाष ७३ को उक्त ब्रह्मचा-
रियों के प्रति किया ।

ब्रह्मचारियो ! मेरी आज यही अवस्था है । दो मास के सम्बन्ध से मुझे यह अधिकार नहीं कि आपसे उस स्थायी स्मरण की याचना करूं जिस की गुरु को शिष्य से आशा होती है । मैंने सदैव आप को मित्र की दृष्टि से देखा । मित्र मित्रों से लाभ उठाते हैं और ऐसा ही हम ने किया । मित्रों के स्मरण से कभी दुःख में हर्ष, कभी पतन में उत्थान, कभी विचार में विस्तार, कभी सदगुणों का संचय होता ही है । अवकाश के समय यदि मैं आप को यह काम दे जाऊं तो मेरा आप का सम्बन्ध धन्य !

ब्रह्मचारियो ! जाते २ आप को क्या स्मारक दूं ? आप का काम ब्रह्म में विचरना है और मैंने प्रातः सन्ध्या को किसी स्थान पर 'ब्रह्मचर्य' का शुभ नाम दिया है । यह "सन्ध्या-रहस्य" आप के काम का है, सो आप को समर्पित है । किसी मुद्दह का स्नेह-स्मारक जानना ।

एक याचना भी कर दूं ? दरिडदेव दयानन्द के झण्डे तले बहुत लड़ाइयां लड़नी हैं । परमात्मा आप को शक्ति-संपन्न करें कि आप पाखण्ड-खण्डनी पताका के सुवीर सैनिक बनें ।

ओ३म् शम्

सदैव आप का—

चमूपति

प्रस्तावना



(१) सन्ध्या पर व्याख्यान दिए कई मास होगए । जो लेख-वद्ध भी साथ २ हुए थे । परन्तु विस्मृति की टोकरी में पड़े पत्र बहुत समय अट्टर रहे । गुरुकुल में रहते हुए स्वभावतः सन्ध्या का ध्यान आया । किंचित् संशोधन किया । कई स्थल फिर लिखे । डर हुआ गुम न होजाएं । एकवार प्रगट हुए विचार फिर हृदय-तल पर आएँ न आएँ । मुद्रण द्वारा सुरक्षित करना उपयोगी समझा ।

(२) सन्ध्या पर पहले भी कई टीकाएं हैं । वस्तुतः सन्ध्या का अभिप्राय ध्यान द्वारा विचार-क्षेत्र का विस्तृत करना है । इस में जितनी सामग्री मिले अच्छी है । सो हमारा एक और टीका बढ़ाना आत्तिष्य नहीं ।

(३) गुरुकुलाध्यापक पं० जगन्नाथजी शास्त्री ने छपने से पूर्व इस को एक दृष्टि देखा और उसे सूचिकर तथा लाभदायक बनाने के कई साधन बताए । उदाहरणतया मन्त्रों के अन्वय उन्हीं की सम्मति से लिखे गए । इन महाशय को हार्दिक धन्यवाद !

(४) मेरे लेख कटे फटे थे । उन्हें गुरुकुल के ब्रह्म-चारियों ने साफ लिख पुस्तक को शीघ्र रूपने योग्य बनाया । उन्हें धन्यवाद तथा आशीष !

(५) लेखक सन्ध्या को सब प्रकार के सुधार का साधन समझता है । न केवल मंत्रों के अर्थ में, किन्तु शिखावन्धनादि क्रियाओं तथा मन्त्रों के क्रम में भी एक रहस्य है । इसी भाव से प्रस्तुत पृष्ठ लिखे गए हैं । पाठकों से प्रार्थना है कि इसी भाव से इन्हें पढ़ें । यदि आर्य समाज में इस पुस्तक के पाठ से कुछ भी सन्ध्या में प्रेम बढ़ा तो प्रस्ताता परिश्रम सफल होगा ।

गुरुकुल मुलतान

माघ १६ सं० १९७४ वि०

चमूपति



भूमिका ।

१-सच्चा स्थायी बीमा ।

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओ३म् क्रतोस्मर क्लिवेस्मर कृतं स्मर ॥

यजु० अ० ४० मं० १६

शरीर ५ भूतों से बना है । इसमें आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथिवी के अंश विद्यमान हैं । सकल सृष्टिकर्ता परमात्मा ने इन में कुछ ऐसा अनुपात रखा है, कि एक अंश की मात्रा बिगड़ी नहीं, और यह अद्भुत यन्त्र विकृत हुआ नहीं। इसी अनुपात के बिगाड़ का फल रोग और इसी का फल अन्त को मृत्यु है । जब यह बोलता चलता पार्थिक पुतला अचानक मौन-साध बैठा अर्थात् जीव ने इस से प्रस्थान किया तो इसे ज्वाला की भेंट चढ़ाएंगे । उसका सारा सौन्दर्य तथा बल भस्म की मुट्ठी होगा । फिर तो वायु में वायु, अग्नि में अग्नि, आकाश में आकाश, जल में जल और मिट्टी में मिट्टी मिल जाएगी । तब जीव को शरीर से क्या ?

एक ऐसे नागरिक की भान्ति, जिस ने सारी आयु संसार में घूम २ कर वैभव इकट्ठा किया, एड़ी चोटी का बल लगाकर पूंजी कमाई। सारे घर को धन-धान्य से भर दिया। अकस्मात् एक दिन लकड़ी के ढेर में चिनगारि सुलगती रहने से भवन में आग लग गई। ईश्वर ने इतनी ही कृपा की कि कार्यवश गृह-स्वामी कुटुम्ब सहित घर से बाहर था। लो ! उन कपड़ों को आग लग रही है जो फ्रांस तथा जापान के कार्यालयों से आए थे, वह कुर्तियां और मेजें ज्वाला के मुख में हैं, जिन पर बैठ कर योरुप की अतिथि-शालाओं को मात किया जाता था। जिन दीवारों की सफेदी बिगड़ने के भय से माघ के शीत में आग न जलाते थे, आज ईंधन ने उन पर काला रोगन कर दिया। पुस्तकों का तो नाम ही न रहा। उन के पत्र तथा अन्तर सब ने मसिका चोला स्वीकार किया।

कड़ ! कड़ !! कड़ !!! शहतीर तथा कड़ियां गिर रही हैं। जो सामग्री जलने की न थी, वह उन के दबाव से टूट गई। अब तो न वर्तन रहे, न भूषण, न कोई और नित्य निर्वाह की चीज़। लाख का घर राख हुआ जाता है। पानी का एंजन आता है और आकाश का चुम्बन करती हुई ज्वालाओं को बुझाता है। पर जो पदार्थ नष्ट हुए, उन को फिर से कौन स्थिर करेगा।

नगर का एक प्रसिद्ध धनाढ्य पिस गया । आओ ! हम भी आर्थिक सहायता न सही, मौखिक सहानुभूति प्रगट कर दें । हम मुख को कुछ शोकावृत सा बना लेते हैं कि सहानुभूति हार्दिक प्रतीत हो । पर सेठजी की मुख की कली वैसी ही प्रफुल्लित है, जैसे कि आग की आपत्ति से पूर्व थी । कहते हैं “ये कोई मेरा बड़ा गोदाम न था । मेरा धन किसी विशेष स्थान में रुपयों अथवा सामग्री के रूप में स्थित नहीं, किन्तु सारा व्यवसायों में लगा है । कम्पनियों में हिस्से हैं, अपने कार्यालय हैं, जिनसे स्थायी आय आती है । जो भवन जल गया इस का भी बीमा करा दिया था । सो चिन्ती भेजी है । रुपया आजाएगा । फिर नया भवन बनवा लेंगे ।

हे शरीर-रूपी भवन को भस्म होते देखने वाले जीव ! क्या तेरे मन की भी यही अवस्था है, जो उक्त सेठ की थी ? क्या तेरी शारीरिक सम्पत्ति भी व्यवसाय-गत है ? क्या इससे तुझे स्थायी आय आती है ? अर्थात् तेरी शारीरिक शक्तियों का प्रयोग ऐसा है, जिस से आत्मिक बल सदैव बढ़ें ? तूने अपने भवन का बीमा कराया या नहीं ? क्या इस शरीर के कूटने पर इस से अच्छा शरीर मिलेगा ? या न मिलने की दशा में तू मुक्तिधाम को प्राप्त होजाएगा ? यदि अब तक यत्र नहीं किया, तो आ ! अब करें ।

२-आत्मिक बही की पड़ताल ।

किसी प्रकार की भी उन्नति करने से पूर्व आवश्यक है कि अपनी वर्तमान अवस्था का पूरा ज्ञान प्राप्त किया जाए । व्यापारी दूसरे दिन की विक्री उस समय करता है, जब पहले दिन की विध मिला चुके । अर्थात् आय व्यय की तुलना करके देख ले कि कितना बचा है ? जिसको अपनी पूंजी का पता नहीं वह उस की वृद्धि के उपाय क्यों कर करेगा ?

प्रियमुमुक्षु ! तू पहिले अपनी आत्मिक अवस्था पर दृष्टि डाल । वेद कहता है—“कृत-स्मर” अर्थात् अपने किये को याद कर । क्या कहीं शिथिलता है ? त्रुटियाँ हैं ? आलस्य उन की निवृत्ति में बाधक हैं ? समाज का भय उठने नहीं देता ? लज्जा के कारण निर्वल है ? ले ! इस का भी एक अचूक उपाय है । “क्लिवे स्मर” अर्थात् बल के लिये स्मरण कर । किस का ? “ओं स्मर ” । अर्थात् उस पवित्र, पतित-पावन, बल के पुंज, सर्व-शक्ति के आधार, धर्मस्वरूप, तेज के सूर्य प्रभु परमात्मा का । बस यही तीन कार्य हैं, जो तुझे प्रतिदिन करने हैं । (१) अपने आचरण पर ध्यान देना, (२) उस में आई त्रुटियों को विचार गोचर रखना और (३) सब बलों के भण्डार सर्व-शक्तिमान का स्मरण करना ।

३-शक्तिमान् के स्मरण से शक्ति ।

शङ्का होसकती है कि परमात्मा के स्मरण-मात्र से ही शक्ति क्यों कर आएगी ? यह बात जितनी गूढ़ है, उतनी आनन्द-प्रद है । बच्चा नङ्गे सिर गली में खेलता है । अपने विचारानुसार जिस बालक को अपने से अच्छा समझता है, उस का अनुकरण करने लगता है । वह रक्त-वर्ण का कुड़ता पहिने है, तो इसे भी रक्त-वर्ण का कुड़ता चाहिए । बड़ा हुआ, पाठशाला गया । अपने सह-पाठियों में से किसी को आदर्श विद्यार्थी जानकर उस का अनुकरण करता है । छोटी श्रेणियों के लिये बड़ी श्रेणियों के विद्यार्थी आचार व्यवहार में नेता हैं । बड़ों के लिए उन का अध्यापक । यही अवस्था मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में चली जाती है । कहते हैं मरते समय भी जैसे सङ्कल्प होते हैं वैसी ही योनि आगे मिलती है । कथन का सार यह कि मनुष्य बिना मानसिक आदर्श के नहीं रह सकता । कौन कह सकता है कि इस ख्याली नेताओं के नित्यप्रति चिन्तन से बालक तथा मनुष्य की आत्मा को क्या लाभ अथवा हानि पहुंची ? यह लोकोक्ति अन्तरशः सत्य है :-

As a man thinketh so he becometh.

अर्थात् जैसा मनुष्य मनन करता है वैसा वह होजाता है ।

गर्भिणी माता के हृदय में जो सङ्कल्प विकल्प उठते रहेंगे, वही गर्भ-स्थित बच्चे के मानसिक जीवन का आधार बनेंगे । यदि मनन-शक्ति इतनी प्रभावशालिनी है, तो परमेश्वर के गुणों के स्मरण का लाभ जिसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्व-शक्तिमान् इत्यादि विशेषणों युक्त कहा है, क्या २ चमत्कार दिखाएगा ? ऐडीसन की माता ऐडीसन को पेट में रखती हुई निरन्तर वैज्ञानिक यन्त्रों का ध्यान करती रही, तो ऐडीसन संसार भर का बड़ा विज्ञान-वेत्ता हुआ, और मंगलादि नक्षत्रों से विद्युत् द्वारा वार्त्तालाप का सम्बन्ध स्थिर करता रहा । एवं उपासक भी अपने हृदय गर्भ में सर्व-शक्तिमान् का ध्यान धारण करे तो अवश्य अपूर्व-शक्ति को प्राप्त हो । बलवान् का स्मरण करना वास्तव में बल के लिये अपनी आत्मा का किवाड़ खोलता है

तो फिर आ ! उन्नति के पिपासों ! एक तो अपने नित्य कृत्यों की पड़ताल किया कर । दूसरे उस दुःखों के मोचनहार मुक्त-स्वभाव को सदैव दृष्टिगोचर रख । उस मिट्टे के पौदे की भ्रान्ति, जो नारङ्गी के साथ जोड़ा जाकर स्वयं नारङ्गी का वृक्ष बन जाता है, और “सङ्गतरे” नाम से स्पष्टतया जताता है कि मैं उत्तम सङ्ग से तर गया हूं, तूं भी उस प्रियतम को अपनी दृष्टि का तारा बना, और उसकी ज्योति में सदैव लीन रह । फिर देख कि अन्धकार निकट भी भटकता है !

हां ! हां ! उत्तम सङ्ग से तर !

४-दैनिक ब्रह्मचर्य तथा दैनिक सन्यास

क्या तू इस भ्रम में पड़ गया कि तुझे घर-बार-त्याग-वन में कुटिया बनाकर रहने का उपदेश हुआ ? भोले-भाले ! क्या भयभीत मत हो ! ईश्वर ने भी तो तेरे कुटुम्ब को नहीं त्यागा, तू इसे क्यों त्यागेगा । प्रकृति के दबाव में आने से जीव दबता है, उस पर अधिकार पाने से उन्नत होता है । तू संसार से उच्च है । संसार को अपने पीछे लगा । अपने सामर्थ्य के कोप को खोल ! अपने ऊपर विश्वास कर । और सारे संसार की नमस्कार ले ! एकान्तवासका तुझे इसलिए उपदेश नहीं देते, कि तू जड़-पदार्थों तथा उनमें लिप्त जीवों से डर कर छिप जाए । जड़ में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि शुद्ध चेतन की तुलना कर ? और जो चेतन, जड़-प्रकृति के हथकण्डों में आचुके हैं वह जड़ों से भी गए-गुजरे जड़तम हैं । तुझे तो एकान्त ग्रहण की सम्मति इसलिये देते हैं कि तू अपने बल को इकट्ठा करले । पहिलवान कुश्ती में आने से पूर्व लंगर-लंगोट कस लेता है । योद्धा अस्त्र-बान्धकर रण-क्षेत्र में उतरता है । तू भी स्वशस्त्रों से सुसज्जित हो । ज्यों २ दिन चढ़ेगा त्यों २ संसार का रण क्षेत्र तपता जाएगा, और तुझे उत्साह पूर्वक उसमें भाग लेना होगा । तू प्रातः समय ही अपने बल का एकाग्र-मन द्वारा संयम

कर । चढ़ती कला सर्व संसार का भला । संसार भर के धार्मिक तथा सामाजिक-नेता संसार से पृथक् न हुए । इसी में विचरे ! परन्तु कुछ समय के लिये उन्हें तप करना आवश्यक था । महात्मा बुद्ध के सम्बन्धी भ्रम-वश यह समझते रहे कि राजकुमार घर बार से रुष्ट होकर वनों में भाग गए हैं । वस्तुतः वह उन्हीं मोह-ग्रस्तों के मोक्ष की धुन में बोधी वृक्ष की एकांत-मयी छाया ढूँढ़ रहा था । मुहम्मद हारा की पहाड़ी में मदीने से दूर न था । मदीना उस के मन में बसता था, मदीने को आत्मिक मदीना (नगर) बनाने के लिये उसे आत्म-संयम करना अवश्य था । अम्बाशङ्कर मूलजी को भागने से रोकता है कि कहीं वन बालक की मृत्यु न बने । उसे क्या पता था कि अमृत निर्जन स्थानों में है, जिस की उपलब्धि से समस्त जगत् को मृत्यु के भय से छुड़ाया जा सकता है । दयानन्द अपनी आयु के इतने वर्ष किसी व्याघ्री की गुफा में गुप्त न था । वह अपनी आत्मा में स्थित उस अन्तरीय ज्योति को वायु के झकालों से बचा रहा था, जिस से संसार में फिर वेद का दीपक प्रदीप्त होना था ।

क्या यह आत्म-संयम केवल ऋषियों तथा नेताओं के लिए नियत है ? नहीं प्रत्येक मनुष्य संसार में नेता है । जो नेतृत्व का नाश करता है वह अपनी दैवी-शक्तियों से अनभिज्ञ है ।

आत्म-हत्यारे ने आत्म-गौरव को नहीं पहिचाना । अरे ! तुझे अधिकार है, तू सब को पीछे लगा ! हां ! ईश्वरीय नियमों को बदलने का प्रयत्न मत कर । हमारे पूर्वजों की दूरदर्शी आंखें प्रकृति के अथाह समुद्र में डूब की लगाती और क्षणर में शिक्षा के अमूल्य मोती लातीं । वह मानुषी जीवन को चार भागों में विभक्त कर प्रत्येक मनुष्य को आत्म-विकास का समान अवसर दे गए हैं । ब्रह्मचर्य की अवस्था इसी आत्म-संयम की अवस्था है । जिस अभिप्राय से दयानन्द वनों में फिरता रहा, मुहम्मद पर्वत की गुफाओं में गुप्त रहा । बुद्ध ने निरर्थक तपस्याओं के पश्चात् बौद्धि-दृष्ट के नीचे बौद्धि-तत्व पाया । उसी अभिप्राय की सिद्धि प्रत्येक आर्य को अपनी आयु के प्रथम के २५ वर्षों में करनी है । फिर वह गृहस्थ में आए और जगत्परीक्षा में एक पूर्णतया सज्जित विद्यार्थी की भान्ति प्रविष्ट हो । शोक ! मां बाप ने तुझे वन का विद्यार्थी न बनाया । क्या तुझ ऐसों के लिए आशा नहीं है ? है ! अवश्य है !! तू अपने प्रत्येक दिन के पूर्व भाग को ब्रह्मचर्य के सदृश बना । अर्थात् नगर से दूर हो किसी वन अथवा पर्वत में चला जाया कर । यदि तू प्रतिदिन खोए हुए बलकों अपनी ओर बुलाता रहा तो तेरे लिए फिर से बल-शुक्त होना कुछ कठिन बात नहीं । गृहस्थ के धन्यों में दिन के मध्य का कुछ भाग व्यतीत कर ।

फिर शाम होते ही घर से पृथक् होजा और प्राकृतिक दृश्यों की सैर तथा उस महति-शक्ति का स्मरण कर जिसे अपने अन्दर रखता हुआ भी उस के संसर्ग से वञ्चित है । यह गृहस्थ में ही संन्यास अथवा वान-प्रस्थ होगा । भाई ! क्या पता है तू कितना काल जिए । जीवन-लता के चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तू इकट्ठे ही लाभ कर । एक ही आश्रम में चारों आश्रमों का आनन्द लूट और सफल-मनोरथ हो ।



५-अपूर्व डाइरी ।

अब तुझे ज्ञात हो गया कि तुझे किस ओर प्रेरित करते रहे ? तुझे पहला पाठ यह पढ़ाया कि अपने कृत्यों पर ध्यान कर तुझे चिन्ता हुई कि भूतल पर मेरे कर्तव्य क्या हैं ? ऋषियों ने इसकी तालिका बनादी है, जो एक अपूर्व क्रम के साथ सन्ध्या मन्त्रों में स्थित है ।

सवितृ मन्त्र के साथ “सविता देवउम” का आश्रय ले जो तेरी उन्नतिका दूसरा उपाय बताया था । और “शन्नो देवी” इत्यादि मन्त्र द्वारा चित्त को सर्व प्रकार के विकारों से रिक्त कर इन्द्रिय स्पर्श से शरीर सम्बन्धी, मार्जन मन्त्रों से मन तथा इन्द्रिय सम्बन्धी, कर्तव्य जान । प्राणायाम तुझे शारीरिक बल तथा मानसिक नैरोग्य देगा मन सापरिक्रमा से गृहस्थ तथा समाज

नहीं! नहीं!! सारे संसार को प्रेमपात्र जानकर निर्वैर तथा द्वेष-शून्य होजा। आगे उपस्थान है, अर्थात् परमात्मा के निकट बैठना यदि अनुभव शक्ति-शाली है और दिव्य-चक्षु खोल सकता है, तो उस अदर्शनीयका दर्शनकर कृत्यकृत्य हो। कैसी अपूर्व सीढ़ी है? शरीर से मन, मन से आत्मा, आत्मा से परमात्मा तक पहुंचा दिया। और तुझे चाहिए ही क्या? संसार भर की प्रार्थनाएं पढ़, और कहीं यह बात नहीं।

मेरे प्रिय! जीवनके सब अङ्गों में अपना कर्तव्य समझ चुका। परमात्मा को साक्षी मानकर कर्तव्यों का चिन्तन किया। यह दूसरे शब्दों में तेरे व्रत हैं। दिन भर इनका पालन कीजियो! परमात्मा से ठट्ठा नहीं करना। उस को बीच में लाकर लज्जित करने का प्रयत्न मत कर। बड़े से बड़े न्यायाधीश के समक्ष में तूने अपना प्रतिज्ञा-पत्र (सन्ध्यामें आए व्रत) रजिस्टरी कराया। उस को तोड़ेगा तो अतीव दण्ड का भागी होगा। उपासकों की भाषा में प्रार्थना और प्रतिज्ञा पर्याय-वाची हैं। तूने उज्ज्वल मन से प्रण किया। जगज्जननी ने तुझे आशीर्वाद दिया। शिवा जी की माता की आशीष निरर्थक नहीं हुई। राजपूत जननियां अपनी आशीर्वाद का फल, अपने वीर वच्चों के बलिदान अथवा विकट वीरता के रूप में देख, कृत्यकृत्य हुई। जापानियों ने अपनी दूध पिलाने वालियों के शुभ शब्दों का मान रूसियों को

विनष्ट करके रक्खा । तुम जगज्जननी के आशीर्वाद का क्या सत्कार करते हो ? तुम्हारा दिन का व्यवहार दर्शाएगा । प्रातः काल की सन्ध्या तुम्हारा ब्रह्मचर्य है उस में यह प्रतिज्ञाएं करना । सायंकाल की सन्ध्या सन्यास है, उस में इन प्रतिज्ञाओं की आलोचना करना कि पूरी हुई या नहीं ? उक्त दोनों आश्रम “ओ३म” में विचरने के हैं । और संध्या का अभिप्राय भी यही है । जमी तो गृहस्थ में ब्रह्मचर्य तथा सन्यास का स्वाद चखाया ।

मन्दिरों के पुजारियों का जनता के हृदयों पर क्या प्रभाव है । विचार-शील उन्हें व्यभिचारी समझते हैं । कारण क्या कि उन का समय तो प्रायः ईश्वर-स्मरण में जाता है, फिर भी उन का आचरण ऐसा नीच रहता है ? भाई ! वह केवल जिह्वा से राम नाम रटते हैं । मन पर उस का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं । उनकी जिह्वा ग्रामोफोन की तरह चलती रहती है । परन्तु मन में कुविचार ही रहते हैं । तुम संध्या का सम्बन्ध जीवन से न तोड़ना । आचार व्यवहार में सदा सन्ध्या मन्त्रों की झलक विद्यमान रहे । यह क्या कि विध तो मिलाओ पर व्यापार न करो ।

जिन प्रार्थनाओं में जीव अपने आप को पतित तथा पापी कहे और परमात्मा को पतित-पावन । और नित्यप्रति एक ही से शब्दों में गिड़गिड़ाकर कहा करे । “हे भगवन् ! तू मुझे उठा”

वह निरर्थक हैं। यदि आज भी मैं उतना ही पापी हूँ जितना कल था, तो ईश्वर ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। और मेरा यह भ्रम कि वह पतितोद्धारक है निर्मूल सा है। रोज़ ऐसे शब्द दुहराने से उपासक और उपास्य में एक स्थायी सम्बन्ध स्थिर होजाता है। उपासक सदैव पापी रहेगा और परमात्मा को भावी उद्धारक समझ मोद मनाएगा, वह समय कभी न आएगा जब वह भावी उद्धारकर्ता वर्तमान उद्धारकर्ता बने। यह ईश्वर पर लांछन है। सन्ध्या ऐसी आत्म-वाचक प्रार्थनाओं से रहित है। तू जो प्रार्थनाएं सन्ध्या द्वारा अथवा अन्य शब्दों में किया करता है, उन्हें सार्थक जान और सार्थक बना। और प्रतिदिन पूर्व की अपेक्षा कुछ उन्नति करता जा। तभी तू उन विचारों और चेष्टाओं से बचेगा, जिन से प्रसिद्ध महन्तोंका नाम कलङ्कित है। फ्रैंकिन ने अपने जीवन को डायरी से सुधारा। उस की डायरी से तेरी सन्ध्या अतिश्रेष्ठ है।

६-जी नहीं मानता ?

पिछले शीर्षकों में हम ने उपासना की आवश्यकता पर बल दिया। हम कल्पना करते हैं कि अब पाठक प्रातःसायं ईश्वर के समीप बैठने, अपने आचरण पर ध्यान रखने, तथा

अपनी त्रुटियों को मिटाने के लिये बल की याचना करने पर कटि-वद्ध है। हमने ऊपर बताया कि इन सब मनोरथों की सिद्धि सम्पत्तया सन्ध्या से ही होसकती है। इस पर उसे कुछ शङ्काएं हैं। लो ! हम उनका भी निवारण कर दें। मुमुक्षु के प्रश्न जिज्ञासुओं के से प्रश्न हैं। वह यह नहीं कि थोड़ासा संशय होने पर धर्म की मर्यादा छोड़ दे। यदि उसकी बातों का उत्तर आज न भी दें तो वह सन्ध्या करता रहेगा और उस अवसर की धैर्य से प्रतीक्षा करेगा, जब उस के मन से कंटक निकाल दिया जाए ताकि जिस शान्ति की उपलब्धि के लिए उसने आसन लगाया है, उसे पूर्णतया प्राप्त हो। यही सम्मति हम प्रत्येक आर्य भाई को देंगे, कि वह थोड़ासा सन्देह होने पर नैतिक कर्मको छोड़ें नहीं। सम्भव है, उन्हींकी बुद्धिमें भ्रम हो।

(१) सन्ध्या संस्कृतमें क्यों करूं ? मुझे उस के अर्थ नहीं आते। आर्य-भाषा अपनी जातीयभाषा तथा राष्ट्र-भाषा है। मैं उसी में प्रभु से बोलूंगा। ठीक ! उपासना मण्डल के पत्नी ! तू पार्थिव भाषाओं के आकाश से ऊंचा उड़। अजात के आगे जाति का बखेड़ा न डाल। इस ममता को छोड़। तू ईश्वर की वाणी में ईश्वर से वार्तालाप कर। जगज्जननी की गोद में बैठ कर तू वही संथा सुना, जो तुझे सृष्टिकी आदिमें सिखाई गई। वेदों की भाषा किसी जाति अथवा देश विशेष की भाषा नहीं।

यदि है, तो मनुष्य-मात्र की। नहीं तो किसी की नहीं। संसार की तो गुप्त २ भाषाओं से भी तू परिचय पाने का यत्न करता है, और पुरानी तथा नई पुस्तकों, शिलाओं, लिपियों तथा स्मारकों की खोज से पुराने मनुष्यों के मनो-विकास का पता लगाता है, और उस सकल वाणीके स्रोत, ज्ञानके भण्डार वेदोंकी की ओर जाता ही नहीं, जिसमें जातियों के साझे पूर्वज परमेश्वर ने अपना प्रथम विचार प्रगट किया। वेद के अर्थ सरल हैं। आदिम ऋषि विना कुछ और जाने इन मन्त्रों का अभिप्राय जान सके। तुझे भी इसमें बहुत परिश्रम न होगा।

(२) सन्तोष नहीं हुआ ? कह ! जो मनमें है कह ! निःशङ्क होकर कह ! जी नहीं मानता। आज भी यही सन्ध्या, बड़े होकर भी यही सन्ध्या ! बालक को भी यही सन्ध्या, बूढ़ को भी यही ? पापीको भी वही, पुण्यात्माको भी वही ? न आयु का भेद न मनो-विकास का भेद ?

प्राणों से अधिक प्रिय ! मानस-विद्या के पूर्णवेत्ता। यहां सांसारिक मनो-विद्या (psychology) नहीं लगती। यह मार्ग कुछ विचित्र ही है। जब तू इसमें प्रविष्ट हुआ और कुछ उन्नति की, तो सब रहस्य तुझ पर खुल जाएंगे। यहां जो 'अ' है वही 'है' है। जो बच्चे के खेल के खिलौने हैं, वही युवक के उत्साह एवं पुरुषार्थकी सामग्री है। जवानका प्रवृत्ति-मार्ग वही,

बड़े का निवृत्ति मार्ग वही । योगी के योग का साधन वही, रोगी के रोग का निवारण वही । पापी पापका नाश करे, धर्मात्मा धर्म का प्रकाश पाए । यह मन्त्र केवल सिद्धान्त हैं । प्रयोग अवस्था के अनुसार होगा ।

हमने लाख यत्न किया, इन मन्त्रोंका अनुवाद आर्यभाषा, उर्दू तथा इङ्गलिशमें कर दें, परन्तु सफलता न हुई पर न हुई । कारण यह कि सब भाषाओं में किसी एक मनुष्य के किसी एक क्षण के विचार एक से शब्दों में आसकते हैं । सब के लिए एक बात बन जानी सम्भव नहीं । वेदका चमत्कार निराला है । यह वह दर्पण है, जिस में प्रत्येक मुख अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है । तू भी इस उज्ज्वल शीशे में अपनी उज्ज्वल आकृति देख !

अवस्थाएं भिन्न सही, पर आदर्श एक है । वेद के मन्त्र प्रत्येक के लिए एकसे सङ्केत करते हैं । जिसने समझा, तर गया । न जाना, रह गया । अन्य मतों पर जिह्वा न खुलवाओ । सब अपने २ समयकी झलक रखते हैं । और वेदकी झलक सब समयोंमें है । सब पर अपने २ देश की मोहर है और वेदकी मोहर सब देशों पर है । सब अपने २ प्रवर्तक की परिछाई लिए हैं । वेद बिना परिछाई वाले की परिछाई है । बालक दूर के दृश्य को न देखे, उसे पता न सही कि उस की यात्रा का

अन्त कहां होगा । पर क्या उसे सड़क भी वह न दें जिस पर उससे बड़े उस के अग्रगामी हैं ?

भाई ! कह दिया । ब्रह्म-यज्ञ का उद्देश्य हृदय-क्षेत्र का फैलाना है । तू क्यों उसे संकुचित करता है । शूद्र है ? आ । तुझे ब्राह्मण के साथ बिठाऊँ । वैश्य है ? क्षत्रियों की पंक्ति में बैठ

बुद्धे को लज्जा है, मैं बालक के पीछे खड़ा किया जाऊँगा । पिता की चिन्ता है मुझ से पुत्र उच्च-स्थान लेगा । पुरुष भयभीत हैं, कहीं स्त्रियाँ ही इनसे अधिक अधिकार न लें । सांसारिक लोग सांसारिक शृंखलाओं में जकड़े खड़े हैं । कभी मुक्त हुए नहीं । मुक्ति चाहते नहीं । समस्त भेदों के नाशक, असमानों में समान सर्व-व्यापक परमात्मा के दरबार में ऊँच नीच कैसी ?

उदयभानु की सुन्दरता में नहाई हुई किरणें किस आंख को प्रकाश के साथ आनन्द नहीं देती ? तारों भरे आकाश की टिमटिमाती ज्योति न पुरुष से पर्दा करती है, न स्त्री से । वर्षा ऋतु के पपीहे की स्वर न शूद्र के कान में सिक्का पिघलवाती है न ब्राह्मण के । यह और बात है कि द्रष्टा की दृष्टि तथा श्रोता की श्रुति उस के अनुभव में भेद कर दे । पर दृश्य तथा श्रुत एक रहेगा ।

एवं सन्ध्या के मन्त्र एक, उपासकों की अवस्था भिन्न, अपने-बोध के अनुसार चिन्तन करें और लाभ उठावें । स्वच्छ

जल वायु रोगी के रोग को मिटाता है तो स्वस्थ के स्वास्थ्य बढ़ाता है । फिर सन्ध्या में पापी और पुण्यात्मामें भेद क्या ?

परमात्मा के अमृत पुत्रो ! सदैव बाह्य भेदों की गोदड़ी में गुप्त रहने वालो ! अपने स्वरूप को पहचानो । उज्ज्वल सूर्य को कालिकमय न करो । बाह्य ओढ़नों को उतारो । नङ्गधड़ जीव लाडेश्वरी माता की गोद में लाड करने चला है ।

शूद्र भाई ! तू भी तो ब्राह्मण के अमृत पिताका अमृत पुत्र है । देवी ! हमारी उपास्य देवी ही है । सत्तरे बहत्तरे ! परमात्मा की आयु का पार ही नहीं । वह अतिवृद्ध है । बालक ! तू नवजात है तो परमात्मा की शक्ति भी नित्य नई है । फिर क्या ? आजाओ, एकवार तो भेद-रहित अभेद्य के आगे इन भयंकर भेदों का भेदन करें । और प्रभु के प्रेम मन्दिर में एक होजाएं ।

७—बहुरूपी सन्ध्या

यात्री घर से चला । ग्राम से ४ मील की दूरी पर स्टेशन था । रास्ते में हरे भरे खेत आए । पास एक राजवाह था । पथिक थक गया था उस ने चाहा, कुछ घूंट पानी पीलूं । वाह के निकट गया, तो क्या देखता है, कि एक महाशय आंखें मूंदे, पलट्ठी लगाए, गर्दन को कील की तरह सीधा किए, विचार

में मस्त हैं । मानो कोई महात्मा योग साधन करते हैं । पथिक ने चाहा एकवार माथा टेक दूं; पर न भगवावेष था और न राख भवभूति ही मली थी । इसलिए वह रुक गया । पर फिर भी संशय रहा ।

पानी पिया । स्टेशन पर आया । गाड़ीके आनेमें देर थी । वह यात्रियों का दृश्य देखने लगा । खेत वाला महात्मा विस्मृत सा ही हो गया । स्टेशन के थल्ले पर रेल की पटरी के पास ही एक जन्टलमैन कोट पतलून डाटे, छड़ी धुमाते, बूट के शब्द से ईंटों पर कड़कड़ करते, चल रहे हैं । साथर कुछ बुढ़ बुढ़ाते भी हैं । विचार आया “ जपजी ” होगा । समीप गया तो वो शब्द न थे । “ ओ३म् ” से आरम्भ होकर कुछ वाक्य कहे जाते थे । यही “ उ०म् ” शब्द खेत वाले महात्मा भी बोल रहे थे । तो फिर उनका स्मरण आया । पूछने की उत्कण्ठा हुई पर साहस न पड़ा ।

गाड़ी में बैठे, तो किसी बाबू साहब ने बूट खोला और खानाखानेसे पूर्व उसी स्थिति में बैठ गया जिसमें खेत के महात्मा थे । कुछ देर अन्तर्ध्यान रह कर इस महानुभाव ने रोटी खाई ।

दूसरे दिन नगर में उतरे । विचित्र समारोह था । इधर झण्डियां, उधर झण्डियां । गाड़ियों पर भजनीक मनोहर स्वर

से वायु-मण्डल को गुंजायमान कर रहे थे। भीड़ इतनी थी, कि ठैरने को ठिकाना नहीं। सायं समय था। भजनीकोंने मधुर वाणीसे वही “ओम्” की रट छेड़ी और वही वाक्य गरजर कर गाने लगे जो स्टेशन के जैन्टलमैन बुड़बुड़ा रहे थे।

दूसरे दिन समाजका वार्षिकोत्सव था। भजन तथा उप-देश होते रहे। वही समय आया और “ओम्” की रट लगा। यहां सब इकट्ठे बोलते थे।

हमारे पथिक को ज्ञात हो चुका था कि यह सन्ध्या थी। इसका अभिप्राय भी जान चुका था कि परमात्माका स्मरण है। शङ्क थी तो यह कि इसके इतने विविध-रूप क्यों? क्या इस क्रिया के नियम भी हैं? स्थान-विषयक, समय-विषयक आसन-विषयक, स्वर-विषयक।

प्रिय पथिक! आ तुझे सन्ध्याके नियम बताऊँ। सम्यक्-तथा वही महात्मा ही सन्ध्या करते थे। दूसरे सब उस आदर्श को पहुंचने के अधूरे यत्न हैं। विविध मनुष्यों की विविध क्रियाएं उन की भिन्न २ अवस्थाओं की द्योतक हैं। इस पर उदाहरण ले।

कभी स्कूल गया है? और ध्यान पूर्वक वहां की क्रिया देखी है? छोटी श्रेणियां कोलाहल करती हैं। अनजान अध्यापक डगड़े से कोलाहल बन्द करता है। वह पढ़ते ही नहीं।

चुप करा दो; उन्हें याद ही कुछ न होगा। बड़ी श्रेणियों में जाओ, वहाँ ऊँचा बोलना पाप है। छोटे मिल मिलकर पढ़ते हैं, बड़े एकान्त चाहते हैं। इस विचित्र क्रम को समझा ? बच्चे का मन समाहित नहीं। उस की दृष्टि बाहर की है। इस का अवरोध उस के शक्ति-कुसुम के लिए मृत्यु है। ज्यों २ आयु बड़ी, सोचने का अभ्यास होता गया। अब चित्त का मुख अन्दर होगया। इसीलिए तो हठ है कि रहने को अकेला कमरा चाहिए। परीक्षा की तयारी स्कूल के आश्रम में नहीं हो सकती, बाग़ को निकल जाते हैं। और वहाँ एकाकी बैठ कर पुस्तक से लौ लगाते हैं। यहाँ तक कि अपना शब्द भी अरोचक सा होजाता है।

यही नियम उपासना का है। साधारण जन बालक हैं। उनका मनो-विकास नहीं हुआ। वह यदि एकान्त में सन्ध्या करेंगे तो सङ्कल्प विकल्प से व्याकुल होंगे। वह सन्ध्या मंदिर बनाएं। और उच्च-स्वर से मंत्रों का उच्चारण करें। पर यह आदर्श दृष्टि-गोचर रहे कि प्रकृति से मन को हटाकर हृदय कोष्ठ में जहाँ परमात्मा और आत्मा का संयम है, स्थित कर सच्चा प्रयाग तीर्थ बनाना है।

समाजों ने मन्दिर बनाए हैं पर बहुत कम। एक नगर में एक मन्दिर पर्य्याप्त नहीं। बृहन्मन्दिर साप्ताहिक अधिवेशनों

के काम आसकता है। नित्य-कर्मों के लिए गली २ में सन्ध्या-लय चाहिए।

निर्धन भारतियों में इतनी शक्ति कहां कि अपने २ गृहों में सन्ध्यालय का उत्तम प्रबन्ध कर सकें। न इतनी कर्म-परायणता है कि प्रातःसायं बन को निकल जाएं।

आर्य-समाजों में हमने सन्ध्या की, और की जाति सुनी है। उच्चारणों का वैविध्य, क्रिया की भिन्नता और बहुधा अभाव, आसन से असावधानता, शुचि अशुचि पर ध्यान न होना, ये सब बातें किसी अद्भुतालयाका दृश्य दिखाती हैं। मानो-इन लोगों का पन्थ एक नहीं। आर्य-समाज की भिन्न शाखाएं होंगी, एक समाज नहीं, ऐसा प्रतीत होता है।

उक्त भेदों का विस्तार यहां तक हुआ है कि यदि सन्ध्या सम्बन्धी पुस्तकों को ही पढ़ा जाए तो भिन्न सम्प्रदायों की षड्-तियां प्रतीत होती हैं। पौराणिक भाई बताते हैं कि उनकी सन्ध्याओं की संख्या १०० से ऊपर है। आर्य भाई इस पर हास्य करते हैं। परन्तु अपनी झोली में भी दृष्टि डाली है? कहीं हम उसी फूट की तय्यारी तो नहीं करते? प्रायः आर्य भाई सन्ध्या आचमन मन्त्र “शन्नोदेवी” इत्यादि से आरम्भ करते हैं जब कि स्वामीजी की स्पष्ट आज्ञा है कि पहले गायत्री से शिखा-बन्धन करो। आचमन कोई करता ही नहीं, और त-

तस्मिन्धी मन्त्रका भी एक ही बार पठन किया जाता है । जब कि स्वामी का आदेश यह है कि उच्चारण क्रिया सहित ३ स्थानों पर तीन २ बार किया जाए । इत्यादि ।

इन भेदों का प्रतिकार क्या है ? यही सन्ध्यालय ! जहां ठीक रीति का प्रतिपादन और अनुकरण होसके ।

जनता में देखा देखी का भाव बहुत है । जो काम मनुष्य अकेला सङ्कोच सहित करता है, वह मिलकर निस्सङ्कोच तथा निरालस्य किया जाता है । सन्ध्यालय खुलने से सन्ध्या का प्रचार होगा और बहुधा आर्य्य कर्तव्य-परायण होजाएंगे । इस में सामाजिक लज्जा से बहुत काम लिया जासकता है ।

सन्ध्या का समय दिन और रात की सन्धि है । जो लोहे की नहीं, चान्दी की नहीं, किन्तु आकाश की घड़ी पर अङ्कित उषा-रूपी भङ्कीले अक्षरों में देखा जासकता है ।

सन्ध्या का आसन पलट्ठी है और छाती, गर्दन और सिर को एक सीध में रखना । यही आसन शरीर के लिए लाभकारी है और इसी में ध्यान ठीक लगता है ।

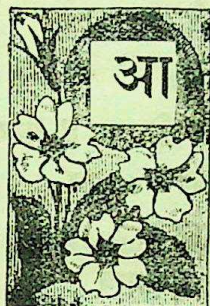
शुद्धि का नियम यह है कि प्रातः तो स्नान करलें और सायं मुख हाथ पांव धोलें, स्नान कर सकें तो और भी अच्छा । स्थान अति उज्ज्वल और रमणीक हो । इस विषय में जितनी सावधानी करो श्रेष्ठ है, कड़ी सीमा क्या बांधे ?

एक बात अवश्य ध्यान में रहे, कि सन्ध्या मुख्य है और नियम गौण। यद्यपि सन्ध्याको नियमों से पृथक् नहीं कर सकते; परन्तु तो भी किसी विशेष अवस्था में, उदाहरणतया रोग के समय, किसी २ नियम का उल्लंघन किया जा सकता है। पर उल्लंघन का कारण अनिवार्य हो तब। यथाशक्ति यत्न करना चाहिए कि कोई भी नियम न टूटे।

जैन्टलमैनी संध्या से सन्ध्या न करना अच्छा है। यही न, परमात्मा का ध्यान न करोगे। कोई डर नहीं। पुरुषको बदले पाप न करो कि सोटी सीप्रेट लेकर परम-प्रभु से नखरे करने लगे। पूज्यपितः! आर्य्य युवकों को इस घोरतम पापसे बचाओं!



टीका



ने सन्ध्या के मन्त्र आएंगे। उन की व्याख्या की जाएगी, तत्सम्बन्धी क्रिया का विधान होगा। अपने अनुभव का कुछ अंश पाठकों की भेंट किया है। इस से अधिक भाषा में शक्ति नहीं, न ही इतना समय है कि और रहस्य प्रकाशित किया जाए।

जैसे हम अपने आप को उपासना समुद्र के अभी तट ही पर खड़ा समझ कर उस की किसी २ लहर का आनन्द उठाते हैं, इसी प्रकार प्रिय पाठकों को भी प्रेरणा करते हैं कि इन पृष्ठों को उस समुद्र का बिन्दु-मात्र ही समझें, और अपने अनुभव द्वारा इसे विस्तृत करते हुए वेदामृत में डुबकी लगाएं। ऋषि वेद-मन्त्रों के अर्थ योग द्वारा अवगत करते हैं। यही इस अपूर्व वाणी के पढ़ने और उस को जीवन का भाग बनाने का एक-मात्र प्रकार है। हम पूर्ण योगी न सही परन्तु जितना सम्भव है, हमें मन को एकाग्र कर, ऋषि भाष्य का आश्रय ले, ऋषि मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

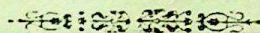
यदि उपासक ऐसा करे तो पूर्ण सफलताका मुख देखे।
सन्ध्या-विधि का क्रम निम्न है । इसी क्रम से मन्त्रों की
व्याख्या और क्रिया का विधान किया गया है ।

- | | |
|----------------------------------|------------------------------|
| (१) गुरुमन्त्र द्वारा शिखा-बन्धन | (७) पुनराचमन |
| (२) आचमन | (८) मनसा-परिक्रमा ६ मन्त्र |
| (३) इन्द्रिय-स्पर्श | (९) उपस्थान ४ मन्त्र |
| (४) मार्जन | (१०) पुनराचमन |
| (५) प्राणायाम | (११) पुनः गुरु-मन्त्र |
| (६) अघमर्षण ३ मन्त्र | (१२) नमस्कार |

इस क्रम में भी एक रहस्य है जो भाष्य पढ़ने से विदित होजाएगा



१-शिखा-बन्धन ।



तो वेदों का अन्तर २ अतिपवित्र ज्ञान का स्रोत है । और यह कहना भी नास्तिकता है कि वेद के अमुक स्थल में दूसरे स्थलों की अपेक्षा अधिक ज्ञानामृत है । तथापि समस्त वेद-मन्त्रों की शिखा गुरु मन्त्र को ठहराया है । यह शिरोमणि मन्त्र वेदों का सार है । द्विज का बाह्य चिन्ह यज्ञोपवीत है । तो आन्तरीय लक्षण गायत्री का ज्ञान है । जन्म के समय जब बालक बोलना नहीं जानता, हम उसे वेद तिलक “ओ३म्” का स्वाद चखा कर मधुमत् बनाते हैं । दूसरा जन्म सावित्री की गोद में गुरु के घर होता है । उस में प्रथम उपदेश इसी सवितृ मन्त्र का किया जाता है । इसी से इस मन्त्र का नाम गुरु मन्त्र है । या यों कहो कि सब मन्त्रों में गुरु अर्थात् प्रथम होने का गौरव रखने वाला यह मन्त्र है ।

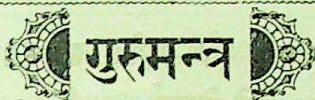
गायत्री मन्त्र इस को इसलिए कहते हैं कि इस का छन्द गायत्री है, जिस में २४ अक्षर होते हैं । इस मन्त्र में एक अक्षर न्यून है । उस की पूर्ति पिङ्गलसूत्र “इयादि पूरणः” के अनु-

सार “वरेण्यम्” में “इ” बढ़ाने अर्थात् इस शब्द को “वरेणि-यम्” पढ़ने से की जाती है। इसे गायत्री इसलिए भी कहते हैं कि यह गाने अर्थात् भजन करने वाले भक्तों को भवसागर से तराता है।

सवितृ मन्त्र भी इसी का नाम है। इसका कारण यह है कि इस मन्त्र का देवता सविता है अर्थात् इस मन्त्र में प्रेरक परमात्मा की स्तुति है और उसी से प्रार्थना है।

“वेद माता” का अभिप्राय भी गायत्री मन्त्र है क्योंकि यह मन्त्र वेदों का अति-मान करने वाला है, जैसे हम आगे भाष्य में दिखाएंगे। यहां इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि वेद की शिक्षा इसी से आरम्भ होती है।

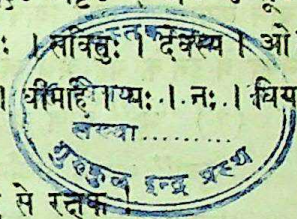
सन्ध्या से पूर्व मार्जन करो जिस का अभिप्राय मार्जन मंत्र के साथ बताएंगे। तत्पश्चात् शिखा मन्त्र से शिखा को अंधों, ताकि परमात्मा के सम्यक् ध्यानमें वालों के बिखरने से मन न बिखरे। तथा शरीर के मुख्य भाग को छूकर धर्म के मुख्य अङ्ग का ध्यान किया जाए। यहां प्राणायाम भी कर लेना चाहिए जिस का प्रयोजन और विधि प्राणायाम मन्त्रों की व्याख्या में बताई है। वहां देख लो !



ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऋ० अष्ट० ३ अ० ४ सू० १०

अन्वय—भूः । भुवः । स्वः । सवितुः । देवस्य । ओ३म्
(परमात्मनः) । तत् । भर्गः । धीमहि । धियोः । नः । धियः ।
प्रचोदयात् ॥



“ओ३म्”—अव धातु से रत्नक

दूसरा अर्थ—इस शब्द में तीन मात्राएं हैं । अ, उ, म् ।
श्रीस्वामी दयानन्दजी (१) ‘अ’, से विराट् अर्थात् विविध
जगत् का प्रकाशक, अग्नि ज्ञान-स्वरूप, पूजा करने योग्य,
विश्व अर्थात् सर्व-व्यापक (२) ‘उ’ से हिरण्यगर्भ
अर्थात् तेजोमय पदार्थों का आधार, वायु अर्थात् बलवान्,
तैजस् अर्थात् तेजोमय तथा (३) ‘म्’ से ईश्वर अर्थात् बल-
वान्, आदित्य अखण्ड प्राज्ञ अर्थात् ज्ञानवान् लिया है ।
माण्डूक्योपनिषद् में अ, से वैश्वानर, उ, से तैजस् और म्,
से प्राज्ञ लिया है । सो जितनी दूर किसी ऋषि की दृष्टि पहुंची
इस शब्द का उतना महत्व उसके बुद्धि गोचर हुआ । बात यह
है कि ‘ओ३म्’ नाम में परमात्मा के सब नाम आ गए हैं । यह

प्रभु का निज नाम है और सार्थक नाम है। प्रकरणानुसार इस शब्द की महिमा आगे दिखाई जाएगी।

भूः भुवः स्वः

यह तीन व्याहृतियाँ कहाती हैं। इन पर ऋषियों ने बहुत ध्यान लगाया है और विविध अर्थ बताए हैं। तैत्तिरय उपनिषद् में इन के यह अर्थ आते हैं।

(१) “भूः” प्राण अर्थात् जो श्वास हम अन्दर लेते हैं।

“भुवः” अपान अर्थात् जो श्वास बाहर जाता है।

“स्वः” व्यान जो प्राण सारे शरीर में है। स्वामीजी प्राण का अभिप्राय जगत्प्राण परमात्मा लेते हैं। अपानसे दुःखों का अपानयता (दूरीकर्ता) जगदीश और व्यानसे जगद्व्यान (सर्व-व्यापक प्रभु)।

(२) भू = ऋग्वेद, भुवः = यजुर्वेद, स्वः = सामवेद, और इन तीनों विद्याओं से पूर्ण अथर्ववेद।

(३) भूः = पृथिवी, भुवः = अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश, स्वः = द्युलोक अर्थात् सूर्यादि।

मन्त्र का अर्थः—(भूर्भुवः स्वः) जगत्प्राण, दुःखों के नाशक, सुख-स्वरूप, सर्व-व्यापक (सवितुः) प्रेरक तथा उत्पादक (देवस्य) प्रकाश स्वरूप (ओ३म्) ओ३म् की (तत्) उस प्रसिद्ध (भर्गः) तेज की हम (भूर्भुवः स्वः) पृथिवी, अ-

न्तरिक्ष तथा धुलोकों में स्थित प्राणी, ऋग् आदि चार वेदों द्वारा, प्राणायाम से मन में स्थित कर (धीमहि) धारण करते हैं अथवा ध्यान में लाते हैं (यः) जो ओ३म् (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) सन्मार्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में प्रेरित करे ।

बच्चे का स्वभाव है कि वो जो कुछ चाहता है, अपने लिये चाहता है । कुटुम्ब तथा समाज का विचार उस के संकुचित मस्तिष्क में नहीं समासकता । ज्यों २ आयु बढ़ती हैं, गृहस्थ तथा समाज से सम्बन्ध जुड़ता है, त्यों २ मनुष्य स्वार्थगत जीवन को छोड़ सङ्कोच की ग्रन्थियां तोड़ता है ! और उस के परिश्रम का उद्देश्य स्वार्थ पूर्ति नहीं, किन्तु स्व-सन्तति पालन तथा जाति का हित चिन्तन होजाता है । (यदि शिक्षा अनुकूल हो तो) ।

सन्ध्या का अभिप्राय मन को व्यक्तित्व के तङ्ग वृत्त से बाहर निकाल विशाल करना है । जिस का केवल मात्र उपाय सर्वव्यापक परमात्मा का ध्यान है । जो भूः भुवः स्वः शब्दों से किया गया ।

इस पर भी बड़ी बात यह कि प्रार्थना केवल अपने लिए नहीं, किन्तु त्रिलोक निवासी प्राणी-मात्र के हितार्थ है । इससे बढ़कर और उदारता क्या हो ?

हमने भूमिका में बताया था कि शक्तिमान के ध्यान से शक्ति आती है। यहां “धीमहि” शब्द का अर्थ धारण और ध्यान दोनों है। तैजस् के तेज को ध्यान गोचर कर स्वयम् तेजोमय बनने का प्रयत्न किया है। यही उपासना है। फिर उस का मार्ग भी बताया है कि यह वेदों के अध्ययन से ही संभव है।

परमात्मा “सविता” है अर्थात् प्रेरक और उससे विनय की है कि हे महाप्रभो! हमारे हित और अहित को आप जानते हैं। हमें आप उस मार्ग में डालिए जिससे—

स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्याचन्द्रमसा विव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमे महि ॥

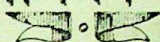
ऋ० मं० ५ सू० ५१ मं० ७ ॥

जीवन के सब अङ्गों में सफलता प्राप्त हो और हम आप के ज्योतिमय दर्शन करने के योग्य हो।

इस मन्त्र में मानव-जीवन का उद्देश्य रखकर आगे के मंत्रों में उसकी पूर्ति के साधन वर्णन किये हैं।

गुरुमन्त्र ऐसा मन्त्र है कि जिस विषय में लगाओ लग जाए। यहां उपासना विषयक होने से इसी विषय के अर्थ किये हैं ॥

२-आचमन मन्त्र



ओ३म् शन्नोदेवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयो रभिस्रवन्तुनः । य० अ० ३६ मं० १२ ॥

अन्वयः--ओ३म् देवीः (देव्याः) आपः अभिष्टये पीतये
नः शं भवन्तु । शं योः नः अभिस्रवन्तु (स्रावयन्तु) ।

(ओ३म्) ईश्वर का निज नाम है यदि इसकी पूरी
व्याख्या की जाए तो इस में ईश्वर के सभी गुण और विशेष-
ण आजाते हैं । ऐसे विशाल अर्थका संसार भरकी भाषाओं
में कोई और शब्द नहीं ।

(देवीः) सब अच्छे (दिव्य) गुणों का भण्डार । गुण
दो प्रकार के हैं (१) दैवी (२) दानवी । जितने अच्छे गुण
हैं अर्थात् वह गुण जो धारण करने चाहिए, उन्हें दिव्यगुण
कहते हैं । इनके विपरीत जो त्याज्य अवगुण हैं, उन्हें दानवी
गुण कहते हैं । ईश्वर को यहां देवी अर्थात् सद्गुणों का समूह
कहा है । विचार करने पर इस शब्द की विशालता का अनु-
मान किया जा सकता है ।

(आपः) सर्व-व्यापक परत्मा (अभिष्टये) चाही हुई अ-
र्थात् पूर्ण (पीतये) तृप्ति अथवा आनन्द के लिये (नः) हमें
(शं) रोग मिटाने वाला अथवा सुख देने वाला (भवन्तु) हो ।

और (शंयोः) सुख और अभय को (नः) हमारे (अभि) सब ओर से (स्रवन्तु) चुवाए ।

ओं के अतिरिक्त “देवीः” और “आपः” ईश्वर के नाम हैं । ये दोनों शब्द व्याकरण में बहुवचन और स्त्रीलिङ्ग के हैं । इनके लिए (भवन्तु) और (स्रवन्तु) क्रियाएं भी बहुवचन की आई हैं । शङ्का उठ सकती है कि ईश्वर तो एक है उस के लिए बहुवचन का प्रयोग क्यों ? इसका उत्तर यह है कि “आपः” शब्द एक वस्तु का नाम होता हुआ भी व्याकरण में बहुवचन वाची रहता है, जैसे आङ्गल भाषा में Mechanics शब्द Plural होता हुआ भी एक विद्या का नाम है ।

ईश्वर का वास्तविक नाम जैसे ऊपर बताया गया ओम् है, जो व्याकरण में अव्यय है अर्थात् विभक्तियों, वचनों, लिङ्गों के हेर फेर में नहीं आता । जैसे स्वयं ईश्वर सब अवस्थाओं में एकरस रहता है । वैसे ही उसका नाम भी सब दशाओं में एक रूप रहता है । “आपः” आदि विशेषण वाची नाम हैं, सो अपने अर्थों के अनुसार किसी वचन वा लिङ्ग के हों इस में हानि नहीं ।

एक और शङ्का यह की जाएगी कि देवीः शब्द द्वितीयान्त है उसके अर्थ प्रथमान्त क्यों लें ? “आपः” शब्द जिस का यह विशेषण है प्रथमान्त है इन दो का मेल कैसे हुआ ?

इस का उत्तर यह है कि वेद मन्त्रों में विभक्ति व्यत्यय होने से एक विभक्ति के शब्द का अर्थ दूसरी विभक्ति में लिया जा सकता है निम्न सूत्रानुसार—

सुपां सुलुक् पूर्व सवर्णाच्छेया डाड्यायाजालः ।

अष्टाध्यायी । अ० ७ पा० १ सूत्र ३६

“शं” का अर्थ शान्ति है जो आनन्द शब्द से भी अधिक विशाल है । साधारणतः शान्ति तीन प्रकार की मानी जाती है, (१) “आध्यात्मिक” अर्थात् शारीरिक रोगों का अभाव (२) “आदि-भौतिक” अर्थात् दूसरे प्राणियों के प्रहारों से बचाव (३) “आधि-दैविक” अर्थात् मन और इन्द्रियों की चंचलता आदि का त्याग । प्रत्येक कार्य के अन्त में जो तीन बार शान्ति शब्द का प्रयोग होता है । उस का अभिप्राय इन तीनों तरह के दुःखों का निवारण होता है । इस मन्त्र में शान्ति स्वरूप ईश्वर से यह तीनों वर मांगे गए हैं । यह सन्ध्या की भूमिका है अर्थात् सन्ध्या करते समय प्रथम शरीर स्वच्छ और नीरोग होना चाहिए, दूसरे किसी शत्रु का भय न होना चाहिए, तीसरे चित्त एकाग्र हो । यदि जीवन भर यही अवस्था रहे, तो और भी अच्छी बात है । सन्ध्या का वास्तविक लाभ वही होगा ।

“स्रवन्तु” शब्द इस मन्त्र में कुछ विचित्र महत्व रखता

है। जैसे दही की पोटली बान्धकर लटका दें और उस में से पानी बून्द २ होकर टपकता रहे। इसी प्रकार शान्ति (अभि) सब ओर से हमारे अन्दर धीरे-२ प्रवेश करे, उसमें वर्षा की भान्ति वेग न हो, क्योंकि वेग से शान्ति भङ्ग होजाती है।

जैसे “आपः” प्रभु सर्व ओर हैं वैसे ही उसकी शान्ति भी सब ओर है। जीव उस शान्तिमय परमात्मा में लीन हुआ अभिलाषा करता है, कि ईश्वरीय आनन्द इसमें सब ओर से चुबे। यही है असली योग तथा समाधि।

जब इस मन्त्र को पढ़ें तो अपने आप को शान्ति स्वरूप “आपः” प्रभुके शान्तिमय राज्य में जानें और सब प्रकार के भय तथा रोगादि मिटा दें। प्रातः सन्ध्या इस व्रत के लिए प्रतिज्ञा है और सायं सन्ध्या उस प्रतिज्ञा की पड़ताल।

आचमन क्यों करें ?

यह मन्त्र पढ़कर तीन आचमन करने की विधि है। अर्थात् तीन बार हथेली में जल लेकर मुख में जल डाला जाता है। जल इतना कि कण्ठ से नीचे उतर जाए।

प्रश्न उठता है कि आचमन क्यों करें ?

स्वामीजी लिखते हैं—आलस्य तथा कण्ठस्थ कफ निवृत्त्यर्थ।

आचमन की विधि केवल सन्ध्या ही के आदि में नहीं, किन्तु प्रत्येक यज्ञके आरम्भ में है। सन्ध्या में भी तीन स्थानों

पर आचमन किया जाता है । इसलिए इस क्रिया का महत्व बताने की विशेष आवश्यकता है ।

कफ आदि की निवृत्ति । जो सज्जन सभा, समाजों में आते हैं और भजनीकों तथा वक्ताओं के आलाप सुनते रहते हैं उनको ज्ञात होगा कि जब वक्ता तथा भजनीक बोलता २ थक जाता है तो वह पानी का घोंट पीलेता है । कभी २ आदि में भी यह क्रिया कर लेता है । इसका कारण क्या है ? यही कि बोलने से गला बैठ जाता है और जल उसको फिर से साफ़ कर के बोलने योग्य बना देता है । सन्ध्या में भी आचमन का एक प्रयोजन यही है ।

आचमन और शान्ति । जल का बड़ा महत्व यह है कि यह एक अनूठी शान्ति देने वाली वस्तु है, जिस का अनुभव नहाने अथवा दो घोंट जल-पान करने से हो सकता है । वैद्य कहते हैं, यदि प्रातः उठते ही थोड़ा सा पानी पीलें तो उदर सम्बन्धी कोई रोग न रहने पाए । दूसरे शब्दों में पूर्ण स्वास्थ्य स्थिर रहे, क्योंकि सब व्याधियों का मूल उदर सम्बन्धी विकार होते हैं । पिछले दिनों एक नई चिकित्सा-विधिका आविष्कार हुआ है, जिस को Hydropathy अर्थात् जल-चिकित्सा कहते हैं । उस से डाक्टर सब रोगों की निवृत्ति जल द्वारा करते हैं । यह तो हुई शरीर सम्बन्धी अर्थात् आध्यात्मिक शान्ति ।

इसी प्रकार आधि-भौतिक तथा आधि-दैविक शान्ति भी जल से प्राप्त होती है। उदाहरणतया कोई मनुष्य किसी मानसिक क्लेश के कारण बिलक २ कर रो रहा हो, उसे ठण्डे पानी का एक घोट पिला दो, और उस के मुख पर खूब जल के छींटे मारो, तो शान्त होजाएगा। यह उपाय क्रोध आदि मानसिक विकारों का है। इन तीनों प्रकार की शान्ति के लिए आचमन भी तीन बार किया जाता है। जब पहला आचमन करो, तो समझ लो कि वो आध्यात्मिक शान्ति देगा, जब दूसरा करो तो उससे आधि-भौतिक शान्ति की इच्छा करो। एवं तीसरा आचमन आधि-दैविक शान्ति के लिए होगा।

इस मंत्र के भौतिक अर्थ

“आपः” शब्द का अर्थ जल भी है। सो मन्त्र का दूसरा अर्थ यह भी है कि “आपः” जल “देवी” अर्थात् अति गुणकर है। इस से तृप्ति होती है और त्रिविध शान्ति मिलती है। यह सब ओर से चूरहा है। अर्थात् सर्वत्र (वाष्प-रूप में) विद्यमान है।

प्रार्थना के रूप में मानो जल सम्बन्धी सारा विज्ञान इस मन्त्र में आगया है। जल चिकित्सा आदि विद्याएं इस मन्त्र का अंश मात्र है!

अथर्ववेद प्रथम काण्ड के सूक्त ४, ५, ६ जल के गुणों के बोधक हैं। यह मन्त्र भी वहीं आता है। निम्न मन्त्र जल चिकित्सा के विषय को और भी स्पष्ट करते हैं।

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजम् । अ० का० १ सू० ४ मं० ४
अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्त विश्वानि भेषजा ।

अ० का० १ सू० ६ मं० २ ॥

सन्ध्या करते समय इस मन्त्र के वही पहिले अर्थ लो, क्योंकि सन्ध्या तो उपासना है, और उपासना सर्व-व्यापक प्रभु की होती है जल की नहीं।

३-इन्द्रिय स्पर्श ।

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं
चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रं । ओं नाभिः ।
ओं हृदयं । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं वा-
हुभ्यां यशोवलं । ओं करतलकरपृष्ठे ।

(ओ३म्) हे परमात्मन् ! हम में (वाक् २) बोलने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे प्राणनाथ ! हमारे (प्राणः २) प्राण हों ।

(ओ३म्) हे सर्व दृक् (सब को देखने वाले) हमारी
(चक्षुः २) आंखें हैं तथा देखने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे सर्व श्रोतः ! (सब को सुनने वाले) हमारे
(श्रोत्रं २) कान हैं तथा सुनने की शक्ति हो ।

(ओ३म्) हे जगज्जनक ! हमारी (नाभिः) नाभि हो ।

(ओ३म्) हे हृदयेश्वर ! हमारा (हृदयं) हृदय हो ।

(ओ३म्) हे सुख-स्वरूप ! हमारी (कण्ठः) गर्दन हो ।

(ओ३म्) हे सब के शिरोमणि ! हमारा (शिरः) शिर हो ।

(ओ३म्) हे सम्पूर्ण बल-दातः ! (बाहुभ्याम्) हमारे
बाजुओं के लिये (यशोबलं) यश और बल हो ।

(ओ३म्) हे सर्व-शक्तिमन् ! हमारी (करतलकरपृष्ठे)
हाथ की हथेली और हाथ की पीठ हैं ।

उक्त भाष्य में हमने प्रत्येक वाक्य में “हो” शब्द अपनी
ओर से लगा दिया है । प्रश्न किया जाएगा, जब मंत्रों में इस
के लिए शब्द नहीं, तो इस की कल्पना क्यों करें ? इसका
उत्तर यह है कि संस्कृत में अस् धातु की क्रियायें प्रायः लुप्त
हो जाती हैं, यहां “अस्तु” क्रिया प्रत्येक वाक्य में लुप्त है ।

हवन से पूर्व भी इन्द्रिय-स्पर्श क्रिया की जाती है । वहां
ये वाक्य हैं—ओं वाङ्म आस्येऽस्तु । ओं नसोर्मे
प्राणोऽस्तु । श्यादि

इनका अर्थ यह है कि मेरे मुख में बोलने की शक्ति हो मेरी नासिकाओं में प्राण हों इत्यादि ।

यही अर्थ सन्ध्या में लगाने चाहिये । अब शङ्का यह रही कि यह इन्द्रियां क्या हों ? इन्द्रिय-स्पर्श जहां किया जाता है, वहां बलकी प्रार्थना होती है यह ऋषियों का मत है, सो इस मन्त्र में भी बल की याचना की गई है । १

वैदिक-धर्म का यह बड़ा महत्व है कि यह दूसरे मतों की न्याईं शरीर का अनादर नहीं सिखाता, किन्तु आत्मिक उन्नति की पहिले सीढ़ी शारीरिक नैरोग्य को ठहराता है । आचमन मन्त्र की व्याख्या करते हुए हमने शान्ति के तीन प्रकार बताये थे, जिनमें प्रथम आध्यात्मिक शान्ति अर्थात् शारीरिक-नैरोग्य है । यह ऋषि वाक्य उस का अनुमोदन कर रहे हैं । योग-शास्त्र के कर्त्ता महामुनि पतंजलि ने योग में पहिला विघ्नव्याधि अर्थात् बीमारी को ठहराया है ।

आजकल के विद्वानों का सिद्धान्त भी यही है कि उन्नत आत्मा केवल स्वस्थ शरीर में ठहर सकता है । यथा आङ्ग्ल भाषा में लोकोक्ति है “ Sound mind in a sound body ” इसका अभिप्राय भी यही है ।

॥ वेदारम्भ संस्कार में इन्द्रिय-स्पर्श के लिए यह वाक्य है :-“ वाङ्म आप्यायताम् ” । इत्यादि

सन्ध्या का महत्व वर्णन करते हुए हमने बताया था कि सन्ध्या में जितनी प्रार्थनायें की जाती हैं वे मानो उनकी पूर्ति की प्रतिज्ञायें होती हैं। यह शारीरिक बल तथा यश की प्रार्थना भी उन सब साधनों के प्रयुक्त करने का प्रण है, जिनसे बल वा यश प्राप्त होता है। यदि यहां उन साधनों का संक्षेपतः वर्णन कर दें तो अनुचित न होगा।

इन वाक्यों में मानुषी देह के मुख्य अङ्गों के नाम आये हैं। इन के साथ समस्त देह को सम्मिलित समझना चाहिये। यदि इन्हीं को बलिष्ठ करने में पूर्ण ध्यान दिया जाए, तो सारा शरीर दृष्ट पुष्ट रहे ॥

सब से प्रथम वाग्निन्द्रिय का नाम लिखा है। मानस-विद्यार्थियों का सिद्धान्त है कि मानसिक उन्नति अर्थात् विचार शक्ति का विकास वाग्निन्द्रिय के विकास के साथ होता है। जो बालक गूंगे रहते हैं उनकी मानसिक वृद्धि रुक जाती है। हम कैसा ही मौन-धारण करके सोचें हमारी जिह्वा परोक्ष-रूप में काम करती रहेगी। हमें एक विद्यार्थी का वृत्तान्त स्मरण है जिसकी जिह्वा बोलते समय अटकती थी। परीक्षा मन्दिर में प्रश्नों का उत्तर लिखते हुए उसकी लेखनी भी शीघ्र-गामिनी न हो सकती थी, क्योंकि लिखते समय भी जिह्वा और लेखनी एक साथ काम करती हैं। अतः मनुष्य मनन-शील

पशु है और मनन-क्रिया वागिन्द्रिय के विकास पर निर्भर है, अतएव इस इन्द्रिय की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

वागिन्द्रिय की वलिष्टता इस में है कि जितने प्रकार के शब्द मनुष्य के मुख से निकल सकते हैं, वे सब शुद्ध उच्चारण के साथ जिह्वा पर लाये जा सकें। कई बालक बल-पूर्वक श्रेणी में अथवा किसी और जगह नहीं बोल सकते, तो अध्यापक उन्हें शिक्षा देता है कि एकान्त में सन्ध्या पढ़ने का अभ्यास किया करो।

यह शिक्षा यथार्थ है। यदि ऐसा अभ्यास संस्कृत में किया जाए तो और भाषाओं की अपेक्षा अधिक लाभ हो, क्योंकि संस्कृत की वर्ण माला में सभी आवाजें जो मनुष्य के मुख से निकल सकती हैं एक अनूठे क्रम के साथ सम्मिलित हैं। दूसरी भाषाओं में यह बात नहीं। फ़ारसी में “ड” और “ट” नहीं तो अंगरेजी आदि में “क्ष” तथा “ज्ञ” नहीं।

संस्कृत का कोई अन्य विषय क्या लोगे? इसी सन्ध्या का ही ऊँची स्वर से शुद्ध उच्चारण करने से अभीष्टसे अधिक लाभ होगा। योगियों में इससे भी सुगम अभ्यास प्रचलित है। वह प्राणायाम के साथ २ “ओं” शब्द का उच्चारण करते हैं। ओं शब्दका महत्व यह है कि यह सब मानुषी स्वरों पर व्याप्त है। जैसे परमात्मा सर्व-व्यापक होने से सारी सृष्टि पर छाया

हुआ है, इसी प्रकार उसका नाम ओं भी गले के नीचे से निकलकर मुख के सारे वाक् स्थानों अर्थात् कण्ठ तालु होंठ इत्यादि का भ्रमण करता हुआ होठों पर समाप्त होजाता है, जिसके उच्चारण करते ही मुख बन्द होजाता है कि वस! आगे वाणी नहीं जासकती।

॥ दोहा ॥

तुलसी 'रा' अस कहत ही, निकसत पाप पहाड़ ।
फिर आवन पावत नहीं, देत मकार किवाड़ ॥

यदि रा की जगह हम ओं रख दें तो यही दोहा ओं पर लग जाता है। अतः ओं के उच्चारण में सभी आवाजें आजाती हैं। किन्तु बात यह है कि ओं बोलते हुए सब वाक् स्थानों को हरकत में लायाजाए। स्यात् सब लोग ऐसा न करसके, संध्या का उच्चारण लाभकारी होगा।

यह हुआ ओं वाक् वाक्। यदि हम इसी प्रकार शेष वाक्यों पर बल देते गये, तो सारी पुस्तक इन्हीं पर समाप्त हो जायेगी। आगे हम अतीव संक्षेप से काम लेकर पाठकों से विनय करेंगे कि दूसरी इन्द्रियों का महत्व स्वयं विचारें और उन्हें शक्तिमती बनाने के उपाय प्रयुक्त करें, ताकि शारीरिक बल की प्रार्थना सार्थक हो।

प्राणों का सविस्तर वर्णन प्राणायाम मन्त्रों की व्याख्या

में आएगा । यहां इतना जान लो कि जीवन का निर्भर प्राणों की यथार्थ गति पर है । और इस गति का उपाय प्राणायाम है जो आगे आयेगा ।

चक्षुओं की रक्षा के लिये उन पर प्रातः ठण्डे जलके छींटे मारा करो । थोड़े प्रकाश में न पढ़ो । सो कर न पढ़ो । अधिक प्रकाश में न ठहरो ! मिर्च आदि न खाओ । हरया-वल पर दृष्टि रक्खा करो इत्यादि ।

कानोंके लिये सावधानी यह रखें कि उन्हें तिनके आदि से छेड़ें नहीं । शेष रक्षा कान अपनी आप करते हैं ।

नाभिका नाम इन ऋषि-वाच्यों में आने पर कई लोग शङ्का करते हैं कि वाक्, प्राण, चक्षु आदि तो मान लिया, कामके अङ्ग हैं । परन्तु नाभि जो शरीरके मध्य भाग में एक गांठ मात्र है, उस का बल बढ़ाना क्या ? ऐसे महाशयों को नवजात बालक का विचार करना चाहिये । उसकी नाभिके साथ एक नाड़ी लगी होती है, जिसे जात-कर्म संस्कार में काट लेते हैं । गर्भ में माता के शरीर के साथ बच्चे का सम्बन्ध इसी नाड़ी द्वारा होता है । इसी से उसके अन्दर आहार आदि जाता है । नाभि के अन्दर एक ऐसा यन्त्र है, जो उस आहार को बच्चे के शरीर का अंश बनाता है । जन्म होने पर हमने बाह्य नाड़ी को काट दिया, परन्तु नाभिके अ-

न्दर का यन्त्र नष्ट नहीं हुआ । अब हम अपना आहार मुख के रास्ते अन्दर ले जाते हैं, सो बाह्य नाड़ी की आवश्यकता नहीं । किन्तु हमें वैद्य बताते हैं कि इस आहारका पाचन नाभिस्थ प्राण (उदान) से प्रदीप्त जठराग्नि द्वारा होता है । योगियों की योग-सिद्धि नीचे से नाभि तक जल चढ़ाकर उसके साफ़ करने से होती है । गवयों की प्रथम अर्थात् सब से नीचा स्वर नाभि से उठती है । यह है महत्त्व नाभि का ।

अब इसे पुष्टि क्योंकर दें ? प्राणायाम से । नाभि से अभिप्राय नाभिके आसपासका प्रदेश अर्थात् उदर, कलेजा, तिलिल, गुर्दा इत्यादि भी होसकता है । इन सब अङ्गों को शक्ति-युक्त करने के लिए व्यायाम करो । प्राणायाम से भी उन्हें बहुत लाभ होगा ।

हृदय रुधिर का केन्द्र है । इसकी घड़क ठीक हो तो स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता । व्यायाम और प्राणायाम इस में साधन हैं । कण्ठ प्राणों का मार्ग है, आहार की नली है, नासिकाएं और मुख यहां मिलते हैं । गला जोर से दब जाए तो मृत्यु होजाएगी । प्राणायाम और आचमन करने से इसकी अवस्था भी ठीक रह सकती है । शिर प्रधान अङ्ग है इसी में वीर्य रहता है जो शरीर का सार है । विचार, स्मृति, आदि शक्तियां भी शिर ही में स्थित हैं । शिर की पुष्टि वि-

शेषतया ब्रह्मचर्य से होती है । बाहुओं और टांगों के लिए डण्ड आदि व्यायाम का अभ्यास करो । इसी से हाथ भी पुष्ट होंगे । नव-युवकों में वान पड़ रही है कि वह छोटे से छोटा भार भी उठाने से लजाते हैं । यह मानुषी शक्ति का अपमान है । इससे हाथ श्वेत रहेंगे और मोम के हाथों की तरह देखने में सुन्दर प्रतीत होंगे, परन्तु वह वास्तविक काम करने वाले हाथ न रहेंगे ।

जितने अङ्गों का नाम ऊपर लिया गया सब आपस में संगठित हैं । एक का विकास दूसरे का भी विकास है । इस लिये एक से ही साधन सब अङ्गों की लाभकारी हैं । सामान्यतः शरीर की पुष्टि के लिए सात्विक भोजन, व्यायाम और ब्रह्मचर्य साधन हैं । औषधियां और पाचन पाक नहीं ।

“इन्द्रिय-स्पर्श विधि”

इन वाक्यों का नाम इन्द्रियस्पर्श-मन्त्र है अर्थात् इन के उच्चारण के साथ अङ्गों को क्लृप्ता होता है । यह क्यों ? इस लिए कि मन की प्रवृत्ति इन अङ्गों की ओर हो । विद्यालयों में शिक्षा की उत्तम विधि यही समझी जाती है कि जो शब्द मुख से कहें, उनकी क्रिया हाथसे करें । सम्भव है इस क्रिया के बिना भी मन इन अङ्गों का विचार कर सके । परन्तु सदैव

ऐसा होना आवश्यक नहीं । अतः क्रिया करनी ही श्रेष्ठ है । व्यायाम और आहार करते समय इन वाक्यों का अर्थ विचारें तो बहुत लाभ हो । ऐसा करनेसे मुखादि इन्द्रियों की क्रिया में मन भी सम्मिलित हो जाएगा और क्रिया का फल कई गुणा होगा । बड़े २ योग्य पहलावानों की सम्मति है कि व्यायाम करते समय जिस अङ्ग को बलिष्ठ करना हो, उसका विशेष ध्यान रखें, और उसे बार-बार छूएं । व्यायाम पूर्णतया सफल होगा । इन मन्त्रों में इन्द्रिय-स्पर्शका यही अभिप्राय है ।

४-मार्जन मन्त्रः

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु
नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः
पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं
तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनः
शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

(ओं भूः) जगत् का जीवन अथवा प्राण-प्रिय ओम्
(पुनातु) पवित्रता करे (शिरसि) शिर में ॥

(ओं भुवः) प्रकृतिका उदान अर्थात् उस में रह कर

उससे पृथक् अथवा दुःख नाशक ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (नेत्रयोः) आंखों में ॥

(ओं स्वः) जगत् का व्याप्त अर्थात् सर्व-व्यापी ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (कण्ठे) गर्दिन में ॥

(ओम् महः) सब से महान् ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (हृदये) हृदयमें।

(ओम् जनः) सृष्टिकर्त्ता, सर्व-जनक ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (नाभ्याम्) नाभि में ।

(ओं तपः) तप अर्थात् ज्ञान वा धर्म-स्वरूप अथवा दुष्टों को दण्ड देने वाला, ओं (पुनातु) पवित्रता करे (पादयोः) टाङ्गों में

(ओं सत्यम्) नित्य, अविनाशी ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (पुनः) फिर (शिरसि) शिर में ।

(ओं खं ब्रह्म) सर्व-व्यापी और सब से बड़ा ओम् (पुनातु) पवित्रता करे (सर्वत्र) सारे शरीर में ॥

“ओ३म्” से उतर कर “भूः”, “भुवः” और “स्वः” ये तीन ईश्वर के नाम बहुत महत्त्व के कहे गए हैं। विविध टीकाकारों ने इनके विविध अर्थ किए हैं। परन्तु यहां वही अर्थ पर्याप्त हैं जो ऊपर दिए गए ॥

उक्त आठ मन्त्रों में भूः, भुवः इत्यादि नाम लेकर शरीर के क्रमशः सब प्रदेशों की शुद्धि की प्रार्थना की गई है। अब यह तो प्रार्थना का ठंडा ही उड़ाना होगा, कि मैला मुंह लेकर

हम ईश्वर के आगे बैठ जाएं, और इन मन्त्रों के उच्चारण से यह आशा करें कि आकाश से जल बरसेगा, और हमारे मुख की मैल बहा ले जाएगा। पहले भी यह बात जताई थी और अब फिर उसी पर बल देते हैं “कि प्रार्थना प्रतिज्ञा है”। पवित्रता मांगने का प्रयोजन यह है कि हम पवित्रता ग्रहण करेंगे।

फिर पवित्रता है दो प्रकार की। एक बाह्य अर्थात् बाहर की, दूसरी आन्तरिक अर्थात् अन्दर की। बाहिर की शुद्धि जलादि से होती है और अन्दर की सत्य से। मनुजी कहते हैं—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति॥

मार्जन मन्त्रों में पहले शिर प्रदेश की शुद्धि आई है। इस प्रदेश में शिर का वालों वाला भाग, माथा, नेत्र तथा श्रोत्र आदि आजाते हैं। आजकल बाल संवारने का फैशन हो रहा है और कंघा किए हुए, माथे पर के, चमकीले बाल सभ्यता के चिन्ह समझे जाते हैं। अतः बालक और युवा बाहिर जाते हुए इन बालों को तेल लगा कर भड़कीला बना लेते हैं। परंतु शिर के नित्यप्रति धोने पर ध्यान नहीं देते, विशेषतया शीत के दिनों। यह बड़ी भूल है। वास्तविक सुन्दरता बनाव शृंगार में नहीं, किन्तु शुद्धता में है। यदि शिर के बाल बहुत छोटे करा दिए जाएं तो उन में मैल रह ही न सके। कुछ हो शिर को प्रतिदिन जल से अच्छी तरह धोना चाहिए, और

उसमें न तो मिट्टी ही रहने देनी चाहिए, न जूवें और कीट ।

नेत्रों को इस प्रदेश से भिन्न भी ले लिया है । यह इस लिए कि शिर भाग के श्रोत्रादि अन्य अङ्ग इतना विशेष ध्यान नहीं चाहते, जितना नेत्र ।

तत्पश्चात् ग्रीवा आती है । उसमें मुख भी सम्मिलित कर लो, क्योंकि इन दोनों की नाली एक है । इसके लिए प्रथम तो दातन रोज़ करना चाहिए जिससे दान्तों और जिह्वा की मैल उतर जाए । दूसरे आचमन द्वारा कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति की जाए । कण्ठ का बाह्य भाग भी नहाते समय जलसे धो लो । कई लोग कानों के पिछले भाग की परवाह नहीं करते; यह हानिकर है । सम्पूर्ण ग्रीवा को अन्दर बाहिर से धोवो ।

अब आया हृदय प्रदेश, अर्थात् छाती और उसके अन्दर के अङ्ग । बाहिर तो पानी का प्रयोग करो, और अन्दर के लिए प्राणायाम उपयोगी है, जिसका वर्णन आगे आएगा ।

नाभिका महत्व इन्द्रिय-स्पर्श में बताया था । इस भाग में उदर, तिल्ली, गुर्दा इत्यादि आजाते हैं । प्राणायाम इन सब को लाभ-दायक है । उदर के लिए प्रातः दो घंट पानी पीना गुणकारी होगा । गुर्दे और मसाने पर पानी बहाओ । यह स्मरण रहे कि मद, मांस, सिष्ट, लैमोनेड तथा बर्फ आदि इस प्रदेश के लिए विष हैं । अतः उनका सर्वथा त्याग किए रखवो ।

“पादयोः” में गुप्त इन्द्रियां और टाङ्गों का समावेश है। इस भाग को शुद्ध समझ कर इस से असावधान मत हो। शेष शरीर के साथ इस अङ्ग को मलकर धोना आवश्यक है। गुप्त इन्द्रियों के विषय में हम यह कहने से नहीं रह सकते कि ये जितनी गुप्त हैं उतनी अधिक शुद्धता चाहती हैं। दुर्भाग्य से हमारी जाति अति भ्रष्ट होचली है, नहीं तो हमारे शुद्धता सम्बन्धी नियम ऐसे हैं कि देखकर संसार चकित है। संक्षेप से हम इस विषय में यह शिक्षा देंगे। किः--

शौच के समय गुदा को दो बार मिट्टी लगाकर धोवो, मूत्रेन्द्रिय को एकवार। फिर बाएं हाथ को जिस से इन्द्रियां साफ़ की हों वार २ मिट्टी लगाओ। और फिर दोनों हाथों को मिट्टी लगाकर खूब धोवो। मिट्टी इस लिए लगाते हैं कि इससे दुर्गन्धि का नाश होता है। परन्तु मिट्टी अतिशुद्ध होनी चाहिए। साबून से यह क्रिया कभी न करना, उस से कुछ लाभ नहीं। लघुशुद्धा करने पर भी मूत्रेन्द्रिय को धो लेना चाहिए। क्या हमें यह बताने की आवश्यकता है कि हम इस विषय में कितने गिर गए हैं? हमें इस ओर ध्यान देते भी लज्जा आती है। अत्युक्ति के भय से हम यह न कहेंगे कि कोई विष्टा आहार में मिलाता है, किन्तु साधारण जनता के खाने वाले हाथ प्रायः विष्टायुक्त होते हैं।

इस प्रकार शरीर के सारे भागों को पृथक् लेकर फिर शिर का नाम आया। यह मानो नहाने की विधि बताई, कि सारे अङ्गों को उक्त क्रम से धोकर फिर शिर पर पानी डालो और सर्वत्र यही क्रिया करो।

यह थी बाह्य शुद्धि। आभ्यन्तरा शुद्धि मन की है। क्योंकि मन की समस्त क्रियाएं इन्द्रियों द्वारा होती हैं इसलिए एक २ इन्द्रिय का नाम लेकर उस के निग्रह की प्रार्थना की गई। शिर में सुविचार धारण, नेत्रों से शुभ दृष्टिपातन, ग्रीवा से शुद्ध, मधुर वाक्य निष्कासन, हृदय में रागद्वेष रहित विशाल प्रेम संस्थापन जिस में काम क्रोध का लेश भी न हो, नाभिसे सात्विक पदार्थों का पाचन, पाँवों से सन्मार्ग-सेवन यह अन्दर की शुद्धि है।

मार्जन का अभिप्राय

उक्त आठ मन्त्रों को कहते हुए मार्जन करना होता है अर्थात् जिस अङ्ग का नाम लिया उस पर थोड़ासा जल छड़क दिया। ऐसा क्यों? इस विधि में दो अभिप्राय हैं। एक तो आलस्य का त्याग। इसपर उदाहरण लो। जब बालक प्रातः होने पर नींद से सचेत न होता हो, तो चतुर माता उस के मुख पर पानी के छींटे देती है। वह तत्क्षण उठ बैठता है।

इसी प्रकार यदि विद्यार्थी परीक्षा के दिनों नियत समय से अधिक पढ़ना चाहे, परन्तु नींद इस में बाधक हो तो वह मुंह, धो लेता है। एवं सन्ध्या में भी आलस्य होने लगे तो मार्जन कर लो।

दूसरा प्रयोजन इस क्रिया का यह है कि मन्त्रों में पवित्रता की प्रार्थना है, और पवित्रता होती है पानी से। क्रिया-युक्त होकर हमारा प्रण दृढ़ होजाता है, और हमें स्मरण रहता है कि जिन अङ्गों को मार्जन मन्त्रों से पानी लगाया था, उन्हें स्नान में पूर्णतया धोना चाहिये। यदि हमें सन्ध्या का अभ्यास होता और उस में आई हुई मार्जन-क्रिया का अभिप्राय याद रखते, तो हमारे व्यवहार शुद्धता-शून्य न होते। हम नहाने में दिखावा न करते और उस शौच का पूरा विधान करते जिसे मनु ने धर्म का अङ्ग बताया है। यदि नहाते समय इन मन्त्रों के अर्थ पर ध्यान दे कर एकर अङ्ग धोएं तो विशेष लाभ हो।

५-प्राणायाम मन्त्रः



ओ३मू भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः ।
ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यं ॥

इन मन्त्रों का अर्थ मार्जन मन्त्रों में दिया जा चुका है।

हम यहां केवल उस क्रिया का विधान करेंगे, जो इन मन्त्रों के साथ प्रयोग में आती है अर्थात् “प्राणायाम” ।

प्राणायाम का अर्थ है प्राणों को रोकना । इसकी विधि स्वामीजी इस प्रकार लिखते हैं कि पहले श्वास को बल-पूर्वक दोनों नथनों से निकाल दो । और जितना समय सुगमता से होसके, उसे बाहिर रोके रखो । फिर धीरे २ अन्दर खींचो और वहां भी जितनी देर होसके ठहराओ । यह एक प्राणायाम हुआ । न्यूनान्यून तीन प्राणायाम करने चाहिएं ।

पञ्चमहायज्ञविधि में लिखा है कि सन्ध्या के आदि ही में आचमन मन्त्र (शन्नोदेवी०) पढ़ने से पूर्व मार्जन करके प्राणायाम करो । फिर इन प्राणायाम मन्त्रों के साथ भी करो और जब अघमर्षण होकर आचमन हो चुके फिर प्राणायाम कर लो । इत्यादि

प्राणायाम हमारी उपासना का एक महान् अङ्ग है । अतः इसके लाभ पर दृष्टि डालना अत्युपयोगी होगा ।

सन्ध्या से पूर्व जो प्राणायाम किया जाता है, उस के वे लाभ भी हैं जिनका वर्णन नीचे आएगा । विशेष लाभ यह है कि इससे सन्ध्या का आसन बन जाता है, और शरीर आलस्य त्यागकर चेतन होजाता है । सामान्यावस्था में भी जब लिखते-र अथवा पढ़ते-र थक जावो, और कमर दुखने लगे,

तो प्राणायाम कर लो; कमर सीधी होजाएगी। सन्ध्या में तो विशेषतः और शेष कार्यो में सामान्यतः यह अत्युत्तम है कि शिर, गर्दिन और छाती एक सीध में हों। प्राणायाम करने से अनायास ऐसा आसन जम जाता है। अतः दिन में जितनी बार यह क्रिया करोगे उतना ही अपने शरीर को टेढ़ा होने से बचाओगे और बुढ़ापा दूर रहेगा।

प्राणायाम रोग मिटाता है। आचमन मन्त्र की व्याख्या करते हुए हम ने एक प्रकार की वैद्यक का नाम लिया था, और बताया था कि कई डाक्टर केवल जल के प्रयोग से रोगों की चिकित्सा करते हैं। ऐसी ही एक विधि आंजसीपेथी अर्थात् वायु द्वारा रोग-विनाश की है। जल की अपेक्षा वायु अति सूक्ष्म है। इसलिए इसका प्रवेश शरीर के उन अङ्गों में भी होसकता है, जहां जल नहीं पहुंच सकता। परन्तु डाक्टरों को इस क्रिया में वह सफलता नहीं जो योगी को है। क्योंकि योगी प्राणायाम के अभ्यास से जहां चाहे वायु पहुंचा सकता है। यह सच है कि हमारे ऋषियों के बताए हुए नियमों का जितना अनुकरण पाश्चात्य विद्वान् करेंगे, उतना ही उन का यत्र फलीभूत होगा।

आजकल क्षयी-रोग का बड़ा जोर है। बालक से लेकर वृद्ध तक सब अपनी श्वास की गति बिगाड़ चुके हैं। उनके प्राण फेफड़ों के निचले भाग तक नहीं पहुंचते, और वहां

रोग के जन्तु उत्पन्न होजाते हैं । इस का उपाय केवल यही है कि दीर्घ-श्वास लेकर सम्पूर्ण फेफड़ों को खोला जाए । जितना इस का अभ्यास करोगे उतना स्वास्थ्य लाभ करोगे ।

दीर्घ-श्वास से हृदय का रुधिर साफ़ होगा, उदर सम्बन्धी व्याधियां दूर होंगी, और पाचन-शक्ति अच्छी रहेगी ।

प्राणायाम से बल बढ़ता है। स्वस्थ शरीर स्वयं बलिष्ठ होता रहता है । प्राणायाम का इसमें अद्भुत चमत्कार है । दूर क्यों जाओ ? अपने देश-भाई राममूर्ति को देख लो । छाती के बल से लोहे की मोटी जंजीर तोड़ देता है । यह क्योंकर ? केवल प्राणायाम-द्वारा । छाती पर हाथी चढ़ा लेता है । यह क्योंकर ? केवल प्राणायाम-द्वारा । छाती में वायु भर लेने से उसमें अपूर्व शक्ति आजाती है । प्रमाण चाहो तो स्वयं करके देख लो ।

प्राणायाम से आधिदैविक शान्ति। उपासना में प्राणायाम का विधान इसलिए है कि इससे मन एकाग्र होता है । बाह्य जगत् के साथ मन का सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा है । जितने सङ्कल्प विकल्प हमारे अन्तःकरण में उठते हैं, उनका मूल कारण हमारी इन्द्रियां होती हैं । अतः मनको एकाग्र करने के लिए इन्द्रियों को वश में लाना चाहिए । परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय का संचालक एक प्राण अथवा उप-प्राण है । अतः इन्द्रिय-दमन की कुंजी ही प्राणायाम है ।

शरीर और प्राण का वही सम्बन्ध है जो रेलगाड़ी और भाप का है। ड्राइवर भापकी गति नियमित रखने से रेल की गति जैसी चाहता है करता है। यदि तुम भी कृतकार्य ड्राइवर बनना चाहो तो श्वास-रूपी वाष्प पर अपना अधिकार जमा लो।

आंखें हमारे वश में हैं। हम जब चाहें इनसे देखें और जब चाहें इन्हें बन्द कर लें। वागिन्द्रिय की भी यही अवस्था है। परन्तु कान और नाक स्वतन्त्र हैं। योगी इन पर भी प्राणायाम-द्वारा अधिकार जमा लेता है। उसकी समाधि में न तो कुवाक्य विघ्न डाल सकते हैं न दुर्गन्धि।

इस प्रकार प्राणायामसे त्रिविध शान्ति उपलब्ध होती है इस क्रिया को कभी न भूलना चाहिए।

एक बात का ध्यान अवश्य रहे कि प्राणायाम में हठ न हो। जितना सुगमता से होसके उतना ही अच्छा है। हठ करने से लाभ के स्थान में हानि होगी ॥



६-अघमर्षण मन्त्राः



ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्वात्तपसोऽध्यजायत ।

ततरोऽन्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः ॥ १ ॥

समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी ॥ २ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।

दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोऽस्वः ॥ ३ ॥

ऋ० अष्ट० ८ अ० ८ सू० ४८ ॥

अन्वयः—ऋतं च सत्यं च अभि इद्धात् तपसः ओ३म्
(परमात्मना) अधि अजायत । ततः रात्रि अजायत । ततः
अर्णवः समुद्र (अजायतः) ।

अर्णवात् समुद्रात् संवत्सरः अधि अजायत विश्वस्यवशी
मिषतः अहोरात्राणि विदधत् । धाता सूर्याचन्द्रमसौ दिवं च
पृथिवीं च अन्तरिक्षं अथः स्वः यथापूर्वं अकल्पयत् ।

(ऋतम्) ज्ञान अर्थात् वेद (च) और (सत्यम्)
प्रकृति (अभि) सब ओर से (इद्धात्) प्रकाशमान (त-
पसः) धर्म-स्वरूप, ज्ञानवान् परमात्मा से (अधि-अजायत)
उत्पन्न हुई (ततः) उसी ज्ञान-स्वरूप से (रात्रि) प्रलय
(अजायत) हुई (ततः) उसी से (अर्णवः) बड़ा (समुद्रः)
समुद्र अर्थात् आकाश हुआ ॥ १ ॥

(अर्णवात्) बड़े (समुद्रात्) समुद्र से अर्थात् आकाश
के होने पर (संवत्सरः) काल (अधि, अजायत) हुआ ।
(अहोरात्राणि) दिन रात (विश्वस्य) सारे जगत् के (वशी)

वश में रखने वाले ने (मिषतः) स्वभवतः (विदधत्) बनाए (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (धाता) उत्पादक परमात्मा ने (यथा पूर्वम्) पहिले की भांति (अकल्पयत्) बनाए (दिवम्) प्रकाशमान लोकों को रचा और (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (अन्तरिक्षम्) रिक्त स्थान अर्थात् आकाश Space को (अथः) और (स्वः) सुखधाम या चमकते मण्डल भी रचे।

तीन ही मन्त्र हैं और इनमें उन तीनों पदार्थों का वर्णन आया है जो ब्रह्माण्ड में अनादि और स्वतन्त्र हैं। पहिले “ऋत” ज्ञान को और “सत्त्व” प्रकृति को लिया है। ज्ञान प्रकृति का गुण नहीं, अतः “ऋत” शब्द से जीव की ओर सङ्केत समझना चाहिए। साथ २ निमित्त कारण परमात्मा को भी बता दिया है।

अगत् में सार क्या है? यह अति-गूढ़ प्रश्न है। प्रकृति-वादी केवल प्रकृति को मानते हैं। प्रकृति क्या है? यही जिस के हम नाना रङ्ग प्रतिक्षण अपनी आंखों के सामने पाते हैं। कहीं आकाश का नीला आंचल, कहीं सूर्य की तीखी चितवन, कहीं तारों की सुहानी धुति और कहीं चन्द्र की सुन्दर छवि। दूर क्यों जाओ, रहने के भवन और हमारी अपनी देह। यह सब उस छबीली नदी प्रकृति के ही अद्भुत खेल हैं।

इस बहुरूपी की तो कहीं स्थिति ही नहीं । जो पदार्थ जैसा आज है वैसा कल न होगा । एक दिन बीज, दूसरे दिन अंकुर, फिर विशाल वृत्त । कौन कहे यह वस्तु वास्तव में एक ही है ? ज्योतिषी कहते हैं कि सूर्य प्रतिदिन पतला हो रहा है; इसके परमाणु इस से अलग होते जाते हैं और प्रकाश मन्द पड़ता जाता है । यही अवस्था अन्य मण्डलों और लोकों की है । जिस गति से संसार के पदार्थ क्षण २ में क्षीण हो रहे हैं, उस से अनुमान किया जाता है कि एक दिन ये इतने सूक्ष्म हो जाएंगे कि अदृश्य होंगे । वह रूप सब पदार्थों का सम होगा । जैसे मिट्टी से बने वर्तन आज भिन्न २ दीखते हैं, परन्तु कुम्हार जानता है कि एक समय सब मिट्टी थे । इसी प्रकार बहुरूपी प्रकृति भी प्रलय काल में एक-रूपी हो जाती है । उसी अवस्था को इन मन्त्रों में “ रात्रि ” कहा है । क्योंकि उस समय प्रकाश नहीं होता और चीजों का वैविध्य न होने से कुछ भी पहिचाना नहीं जाता । प्रकृति की इस अवस्था को “ कारण दशा ” कहते हैं ।

जब परमाणुओं के संयोग से सृष्टि होती है तो यह ‘कार्य’ हो जाती है । आजकल ‘कार्य’ है । जड़ प्रकृति स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती । वैज्ञानिक एक दूसरा पदार्थ “ Force ” ‘शक्ति’ मानते हैं । हम पूछते हैं, शक्ति चेतन है या जड़ ? जड़

हो तो उसके कार्य नियमित न होंगे। अन्येर नगरीके राजाकी भांति एक आज्ञा पुरस्कार निमित्त दी जाएगी, तो दूसरी तत्क्षण फांसी निमित्त। कोई व्यवस्था, कोई क्रम, कोई पद्धति न होगी। परन्तु वास्तव में संसार में अन्येर नहीं। ब्रह्माण्ड का अगार अपनी नियन्त्री शक्ति को बुद्धिमान् बताता है। उस शक्ति के लिए यहां शब्द “अभीक्षा” आया है अर्थात् सर्वथा चेतन और “तपसः” ज्ञान स्वरूप। वही संसार का निमित्त कारण है। वही प्रकृति की विकृति करता और फिर उसे समावस्था में ले जाता है।

प्रकृति कब से है ? परमात्मा कब से है ? जीव कब से है ? ये शङ्काएं विचार शीलों को होती हैं। वेद इन तीनों पदार्थों को अनादि मानता है। विज्ञान तथा अनुभव भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। यदि अब कोई चीज़ नूतन नहीं होती तो पहिले क्यों कर आदि की कल्पना करें ? सृष्टि का प्रवाह कब से चला ? यह परमात्मा को कैसे सूझी कि “समरूपा” को “असमरूपा” करे इस का उत्तर “यथापूर्वम्” और “मिषतः” शब्दों में दिया है। आधुनिक सृष्टि परमात्मा का पहिला परीक्षण नहीं, जो सफल हुआ। किन्तु ऐसे ही अनादिकाल से अनेक चक्र हुए, जैसे परमात्मा अनादि उसी प्रकार उस का स्वभाव स्रष्टृत्व भी अनादि। जब वह स्रष्टा अथवा प्रलयकर्त्ता

न था, तब वह परमात्मा न था। अतः यह प्रलय और सृष्टि की शृंखला पहिले से ही होती आई तथा आगे भी होती चली जाएगी। यह वह सूत्र है जो न आरम्भ हुआ न समाप्त होगा। अन्य जितने पदार्थ इन मन्त्रों में कहे हैं वे प्रकृतिके कार्य हैं। उन के साथ और कोई भी सम्मिलित करो।

कई टीका-कार इन मन्त्रों में हेर फेर कर सृष्टि का क्रम बताते हैं कि अमुक पदार्थ पहिले हुआ अमुक पीछे। हमारे विचार में यह कल्पना अशुद्ध है। अर्णव समुद्र अर्थात् आकाश और संवत्सर अर्थात् काल (Space and Time) सब से पूर्व ठीक हैं। क्योंकि इनही में संसार विचरता है। आगे क्रम नहीं बनता। इन मन्त्रों में परमात्मा को सृष्टि-कर्ता तथा (वशी) नियन्ता बताकर सृष्टि की सामग्री, (प्रकृति) और जीव के अनादित्व पर बल दिया है और प्रलय तथा सृष्टिके प्रवाह का अपूर्व वर्णन किया है।



अधमर्षण क्या ?

इन मन्त्रों का नाम अधमर्षण मन्त्र है। अध का अर्थ है पाप और मर्षण दूर करना; अर्थात् पाप का दूर करना। स्वामीजीका मत है कि जबर पाप मन में आएँ, इन मन्त्रों का ध्यान करो, पाप हट जाएगा। हमें इसका अनुभव भी है। आप

पूछेंगे, इस में हेतु क्या ? वह यह कि पाप का मूल केवल अपने स्वरूप तथा स्थितिका अज्ञान है । कोई तो अपने आपको परमात्माका बड़ा भाई समझता है और अन्य प्राणियों पर अत्याचार करना उस ज्येष्ठ भ्रातृत्व का स्वाभाविक फल जानता है । वह अपनी वास्तविक स्थिति से ऊंचा उड़ा । वह उक्त अज्ञान का एक रूप, जिसे अभिमान कहते हैं । एक और महाशय अपना इतना भी अस्तित्व नहीं जानता जितना छुद्र प्रकृति का । वह रींगता है और गिड़गिड़ाता है । आत्म-विश्वास उस में नहीं । काम करने का उत्साह उस से कोसों दूर है । यह उक्त अज्ञान का दूसरा रूप है । जिस का लौकिक नाम 'भय' है । वस संसार में पाप जितना होता है इन्हीं दो कुत्सित करणों से होता है । जिस ने इन दो का नाश किया वह पापों से छूटा; रोग का नाश मूल के नाश से होता है । भला! जिसने इन मन्त्रों में वर्णित ईश्वर महिमा का चिन्तन एकवार भी कर लिया, वह अभिमान क्या खाक करेगा ? जहां दरिया है वहां बिन्दु क्या ? लाखों करोड़ों जीव जिस आत्मा के आगे हाथ बांधे हैं उस पर एक जीवका दबाव हो ? असम्भव! रहा भय, उस का भी इसी चिन्तन से मूलोच्छेदन होगा । क्योंकि जो परमात्मा हाथी का रक्तक वहीं चिंवटी का । अत्याचारियों तथा बलवानों के शिर पर उस शासक का दण्ड और दबाव

है। तनिक आगे विचारों, तो कर्म और फल के परामर्श से आवागमन का सिद्धान्त अवगत होगा। और वही आधार है पवित्राचरण का।

सन्ध्या में अघमर्षण इसलिए आया कि इस पर रोज़ ध्यान दिया जाय और पापों को दूर ही दूर रक्खा जाय ॥

७-आचमन दूसरी वार

इस स्थल पर “शन्नोदेवी” मंत्र से फिर तीन वार आचमन करो। कारण यह है कि अघमर्षण से पूर्व प्राणायाम किया है। प्राणायाम से कण्ठ, हृदय, उदर और फेफड़ा गर्म होजाते हैं और शुष्कता का अनुभव होता है। सूखे कण्ठ को तर करने तथा व्याकुल हृदय को शान्ति देने के लिए आचमन अत्यन्त लाभ-कर है। प्राणायाम और आचमन में अघमर्षण का अन्तर इसलिए रक्खा कि उष्ण अङ्गों पर तत्काल पानी डालना हानि-कर है। पथिक थका मांदा मार्ग से आए, तो उसे झटहि पानी नहीं पीने देते, न अङ्गों पर ही तत्क्षण जल डालने देते हैं। जैसे वह पहले कुछ विश्राम करता है वैसे ही हम भी करते हैं।

यों ही भी सन्ध्या में कई जगहों पर पानी पीने की आवश्यकता होती है जिस से मंत्रोच्चारण में सुविधा हो । यदि ऐसे स्थल नियत हों तो व्यवस्था रहती है । इकट्ठी सन्ध्या करते हुए वैविध्य नहीं होता और डेढ़र ईंट का अलग मन्दिर होने से फूट नहीं पड़ती । जातीयता में ऐसे नियम बहुत लाभ-कारी हैं ।
मन्त्र का अर्थ होचुका है ।

८-मनसा-परिक्रमा

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता
दित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्योनम ऋभ्यो नम एभ्योऽस्तु । योऽस्मान्-
न्दोष्टि यं वयं द्विष्मस्तम्बो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

ओ३म् दक्षिणा दिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि-
राजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो० ॥२॥

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू-
रक्षिता अन्नमिषवः । तेभ्यो० ॥ ३ ॥

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो

रक्षिता शनिरिषवः । तेभ्यो० ॥ ४ ॥

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्री-
वो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो० ॥ ५ ॥

ओं ऊर्ध्वा दिग्वृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रोर-
क्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो० ॥ ६ ॥

अथर्व कां० ३ अ० ६ सूक्त २७

अन्वयः—प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची ध्रुवा ऊर्ध्वादिक्
६ (एषुदित्तु) अग्निः इन्द्रः वरुणः सोमः विष्णुः बृहस्पतिः
असितः स्वजः श्वित्रः ओ३म् अधिपतिः (अस्ति) (स)
तिरिश्चिराजीः (राजेः) पृदाकू (पृदाकूभ्यः) रक्षिता अस्ति ।
(तस्य) आदित्याः पितरः अन्नं अशनिः कल्माषग्रीवः (क-
ल्माष ग्रीवाः) वीरुधः वर्ष इषवः “ ६ ” (इमे षट् इषवः
सक्तयाः) (सन्ति) तेभ्यः अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः (एभ्यः
सर्वेभ्यः) नमः अस्तु । शेषः सरल एव ।

(प्राची) पूर्व दिशा या वह दिशा जिस ओर मुख हो,
(दक्षिणा) दक्षिण दिशा या दाहिने हाथ (प्रतीची) प-
श्चिम में या पीठ पीछे (उदीची) उत्तर दिशा या बाएं हाथ
(ध्रुवा) नीचे (ऊर्ध्वा) ऊपर (दिक् “६”) इन छैः
दिशाओं में (अग्निः) ज्ञान-स्वरूप, प्रकाशक (इन्द्रः) सर्व-

शक्तिमान् (वरुण) सब से श्रेष्ठ (सोमः) शान्त-स्वरूप अथवा उत्पादक (विष्णुः) सर्व-व्यापक (वृषस्यतिः) वाणी का या बड़ों का स्वामी (ओ३म्) ओ३म् नाम का परमात्मा (अधिपति "६") इन छैः विशेषणों युक्त पति हैं ।

वह (असितः) बन्धन-रहित (स्वजः) सर्वथा जन्म रहित "यद्वा स्वस्मात् जायत इति स्वजः" "स्वयम्भूरित्यर्थः" जिस का कोई कारण नहीं (शिवत्रः) सुख-स्वरूप है । वह (तिरश्चिराजी) पृष्ठ रहित कीड़ों के समूह और (पृदाकू) पृष्ठधारी बड़े पशुओं का (रक्षिता) रक्षक है या इन सब से हमारी रक्षा करता है ।

(आदित्याः) सूर्य की किरणें (पितरः) विद्वान् (अन्नम्) अनाज (अशनिः) विजुली (कल्माष ग्रीवः, वीरुवः) हरि गर्दिन अर्थात् शाखाओं वाले वृक्ष, बेलें और (वर्षम्) वर्षा उस की (इषवः "६") छः शक्तियां या वाण हैं ।

(यो) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यम्) जिस से (वयं) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उस द्वेष भाव को हम आप के (जम्भे) न्याय रूपी जबड़े में (दध्मः) डालते हैं ।

परमात्मा को सर्व-व्यापी समझने के लिए मन ऊहों दिशाओं का चक्कर लगाता है और उस महान् आत्मा की अपूर्व-महिमा देख

बलिहार हुआ जाता है। कई भाई सन्ध्या में किसी स्थल पर उठकर शरीर-द्वारा चक्कर काटते हैं। परिक्रमासे यहां यह विशेष अभिप्राय नहीं है कि शरीर को घुमाया जाय। किन्तु मानसिक चक्र लगाकर उस छहों दिशाओं के स्वामी पर न्योछावर हो जाना चाहिए। यदि शरीर घुमाने से प्रयोजन हो तो चार दिशाओं में तो मुख फिर सकता है फिर नीचे ऊपर के लिए क्या किया जाएगा ?

अग्नि, इन्द्र आदि शब्द उसी के गुणवाची हैं। इन में प्रभु की स्तुति है। इन्हें केवल एक २ दिशा से नहीं, किन्तु सब दिशाओं से सम्बद्ध जानना चाहिए। कोई कहेगा कि प्रकाश पूर्व से आता है, अतः अग्नि पूर्व में है। परन्तु परमात्मा भौतिक प्रकाशका ही स्रोत नहीं, न प्राची केवल पूर्व ही है। यह वो दिशा भी है जिस में उपासक का मुख है। यदि वह उत्तर को हुआ तो ?

इसी प्रकार चाहे दाहिना हाथ अधिक बलवान और बायां शान्ति प्रधान हो। इन्द्र केवल शारीरिक शक्ति का द्योतक नहीं न सोम की शान्ति निर्बलता से है, फिर दक्षिणा और उदीची विशेष दिशाओं के भी नाम हैं। यदि उपासक उधर दायें और बायां हाथ न करे तो † ?

† आजकल पूर्वाभिमुख सन्ध्या करने पर बल दिया जा रहा है। इस में कुछ खोखली सी युक्तियां भी दी जाती हैं। परन्तु स्वामी के सिद्धान्त के यह बात विरुद्ध है। (देखो पञ्चमहायज्ञविधि में इसी मन्त्र की व्याख्या)

बृहस्पति वाणी का स्वामी है । और वाणी आकाश का गुण है, परन्तु आकाश उस नीली चादर का नाम नहीं, जो ऊपर लटकी हुई प्रतीत होती है । आकाश सब ओर है और वाणी भी सब ओर होती है ? अतः बृहस्पति भी सब ओर ॥

विष्णु और वरुण किसी दिशा विशेष में सिद्ध ही नहीं होते । अतः इन नामों का सम्बन्ध एकर दिशा से जोड़ने का परिश्रम व्यर्थ है, सर्व-व्यापी के सब नाम सर्व-व्यापक हैं । एवं उस की शक्तियाँ ।

“ असित ” भी वही है “सु, अज” भी वही है और “शिवत्र” भी वही है । अर्थात् वह जन्म मरण के बन्धन में नहीं आता, शुद्ध तथा मुक्त-स्वभाव होने से ।

रत्नक वह हमारा है ही । वह अधिपतियों का अधिपति और हम उस की प्रियतम प्रजा ।

वह तिर्थक जीवों का भी रत्नक है और बड़े-पूछ धारियों का भी । यदि चिंटी उसकी शरण है तो हाथी को भी उसकी अमृतमय-छाया के बिना स्थान नहीं ।

रत्ना की सामग्री भी कैसी विचित्र है ? कहीं सूर्य की सुन्दर ज्योति जो उजाला भी करे, अन्न भी पकाए, रोग भी मिटाए । कहीं पितर अर्थात् विद्वान् हमारे मार्ग-दर्शक जो जगत् भर के विघ्न तथा घास मिटा सब को मुक्ति का टिकट ले दें ।

फिर अन्न है कि प्राणी मात्र के जीवन का अनन्य आधार ।
विद्युत् प्राण की तरह संसार के घटर में विद्यमान । ब्रह्माण्ड
में जो शक्ति है उसी विद्युत् का दूसरा-रूप है । वनस्पति सब
की स्वाद्य है, असाध्य रोग भी इसी से साध्य । वर्षा का कहना
ही क्या ? कृषक इसी से अकृष । पपीहा इसी का पिपासु ।
फूल पत्ती की यही स्फोटक ।

कहां तक वर्णन करें ! उस दयामय के उपकार अनन्त
हैं । हम इन का प्रतिफल क्या दें ? हम असमर्थ ! वह साम-
र्थ्यका भण्डार ! हम भिखारी ! वह दाता ! हमारी उस की तु-
लना कैसी ! हां ! “नमः” ही एक शब्द है जो कृतज्ञता का
पूरा प्रकाशक है । उसी का बार २ प्रयोग करें । उस रत्नक
के लिए, उसकी रत्ना के लिए, उस रत्ना की अपूर्व सामग्री
के लिए “नमः, नमः, नमः” ।

हे स्वामिन् ! आप का दानपात्रों में हो ! हम उस का
वह व्यय करें जो यथेष्ट हो । आप के पुरस्कारों से हम पूरा
लाभ उठाएं ।

जब मानसिक दृष्टि से सारे जगत् का अवलोकन किया
और सारे ही जगत्को जगत्कर्त्ता की ज्योति में सुरक्षित पाया !
उस विश्व-पति की फालना में जैसे हम वैसे ही और प्राणी ।
तो कुटिलता गई, क्रूरता नष्ट हुई, स्नेह जागी, दया हृदय-म-

न्दिर में समाई, प्रेम के राज्य में हम प्रेम-मय होगए, ब्रह्माण्ड एक कुल बन गया और हम उस कुल के दीप, दिवाकर । भाईयों में द्वेष होगा, साथ रखे वर्तन खट २ किए बिना न रहेंगे, परन्तु वह द्वेष कुछ ऐसा ही होगा, जैसे श्रावण की वदरिया कि दो मिनिट घिरी, बरसी और खुल गई । हमारे अपने द्वेष कैसे ? जहां परमात्मा पिता है वहां बालकों का स्वातन्त्र्य क्या ? लड़े हैं तो पिता की गोदी में फिर एक ! झगड़े हैं तो उस का निर्णय उसी के न्याय पर ! वृथा वैर की ज्वालाएं हृदय में प्रज्वलित रखना कहां का आर्यत्व है ? आर्यों के पितः ! आर्यों को शान्त करो ।

जो प्रातः उठते ही यह प्रतिज्ञा प्रिय परमात्मा के चरणों में कर गए और साबं होने पर उस की पूर्ति की वेद-मन्त्रों से सादी दी । उनका जीवन धन्य ! वहीं तो परमपिता के पवित्र पुत्र हैं ।

९-उपस्थान



‘उपस्थान’ का अर्थ है निकट बैठना । यही अर्थ ‘उपासना’ शब्द का है । इन शब्दों से विशेषतया परमात्मा के निकट होना समझा जाता है । सन्ध्या का दूसरा नाम सन्ध्योपसन भी है, जिस से स्पष्टतया सिद्ध है कि सन्ध्या का मुख्य भाग तथा

उद्देश्य उपासना है। श्रीस्वामीजी “स्वमन्तव्यामन्तव्याप्रकाश” में उपासना की व्याख्या यों करते हैं:—

“जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्व-व्यापक, अपने आप को व्याप्य ज्ञान के, ईश्वर के समीप हम, और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात्कार करना “उपासना” कहावी है इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है”।

इन्हीं शब्दों से आगे आने वाले मन्त्रों का महत्व समझ लेना चाहिए। सन्ध्याका सार अब आएगा ‘सम्यक्तया ध्यान’ आगे लगेगा। पिछले मन्त्र सब इसी भाग के लिए तय्यारियां मात्र थे। अबतक यम नियम का प्रतिपादन हुआ, अब समाधि आई है। आनन्द तब है कि इस स्थल पर पहुंचते ही वस्तुतः समाधि की अवस्था हो।

१०-उपस्थान मन्त्र (१)

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरं
देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योति रुत्तमम् ।

अन्वयः—वयं तमसः परि स्वः देवत्रा (देवेषु) देवं उत्तरं
सूर्यं उत्तमं ज्योतिः पश्यन्तः उत् अगन्म ।

(वयं) हम (तमसस्परि) अन्धकार अर्थात् अशान्ति और पतनसे दूर (स्वः) प्रकाश तथा सुख-स्वरूप (देवत्रा) प्रकाशमानों में (देवं) अति प्रकाशमान (उत्तरं) प्रलय के पश्चात् रहने वाले (मूर्ध्यं) सर्व-व्यापक (उत्तमं) महान् (ज्योतिः) प्रकाश को (पश्यन्तः) देखते हुए (उत् अ-गन्म) भलीभान्ति प्राप्त हों ।

अब उपासक उस सीढ़ी पर आया जिस के लिए जन्म काल से परिश्रम था । उस के हृदय में शुभ इच्छा स्फुरित हुई । कैसी मंगलमय कैसी सौभाग्यभरी इच्छा ! कि अपने प्रियतम परमपिता को एक दृष्टि देखूं और उस की गोद में समाजाऊं । हैं ? देखूं ? देखना दूरस्थ पदार्थों का होता है । यदि अंजन को देखना हो तो उसे आंख में लगाओ मत । पुतली जो आंख के अन्दर है, आज तक किसी ने नहीं देखी । वह परम-न्यारा पुतली क्या उस की सूक्ष्म-दृष्टि के भी अन्दर समाया हुआ है । फिर उसे देखें कैसे ? हां ! भौतिक पदार्थों के देखने को भौ-तिक आंख और उसे दूरी की भी आवश्यकता । परमात्मा अखण्ड है वह बाह्य आंखों से देखा नहीं जाता । उस का दिव्य चक्षु अर्थात् आत्मा के अनुभव द्वारा ही साक्षात्कार होता है । इसी प्रयोजनसे इस मन्त्र में “पश्यन्त” आया है । “अगन्म” उससे दूसरी क्रिया नहीं । किन्तु उस निरन्तर विद्यमान, दूर

तथा निकट एक-रस रहने वाले का देखना और मिलना, छाती से लगाना और गले से लपटना-लो फिर लोक व्यवहार की बातें होने लगी-एक है ।

वह छवीला वह सजीला, वह महान् मनोहर, वह परम प्रभाकर है कैसा ? मन्त्र में उसे “तमसस्पारि” कहा है अर्थात् अन्धकार रहित, अज्ञान से दूर, अज्ञानियों को प्राप्त न होने वाला । ‘स्वः’ ‘देवत्रा देवं’ “उत्तमं ज्योतिः” अर्थात् पूर्ण प्रकाश । तो क्या वह रात्रि के समय लुप्त होता है और मध्याह्न में प्रदीप्त हो चमकता है ? दीपक की बत्ती के ऊपर तो विद्यमान है परन्तु मूल में नहीं ? भोले भ्रातः ! भौतिक संसार में निमज्जित रहने वाले प्राणिन् ! “उत्तमं ज्योतिः” न सूर्य का प्रकाश है न विद्युत् का आभास । न प्रभात की रंगीली छटा है न सायं की लाल २ उषा । वह वेलाओं से ऊपर है और वेलाएं उस से प्रकाशित हैं । वह मण्डलों का स्वामी है और मण्डल उस से व्याप्त हैं । उसका प्रकाश धूप तथा परछाई, शशि तथा निशि दोनों में एक-रस एक-रूप से दीप्तिमान् ! उपासकों के हृदयों द्वारा अनुभूत, नास्तिक और मूर्खों से लुप्त । इस प्रकाश का दूसरा नाम आनन्द है, जो परमात्मा का स्वरूप है । उस के मिलने की इच्छा और फिर साधन-युक्त इच्छा ! सफलता इस के पांव चूमेगी । कृतकार्यता अगुवाई करेगी ।

११-उपस्थान मन्त्र (२)

ओं उदुत्यं जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ४ व० ७ ॥

अन्वयः—उदुत्यं जातवेदसं देवं सूर्यं विश्वाय दृशे (दृष्टुं)
केतवः वहन्ति ।

(त्वं) उस (जातवेदसं) सकल ब्रह्माण्ड की सूची
रखने वाले यद्वा कार्य कारण की विज्ञप्ति कराने वाले (देव)
प्रकाश स्वरूप (सूर्य) सर्व-व्यापक (ओ३म्) को (वि-
श्वाय) सब के (दृशे) देखनेके लिए (केतवः) झण्डियां
(उत, वहन्ति) हिलती हैं ।

मुमुक्षु इच्छा-रूपी यान पर चढ़ चुका । उसे मार्ग की
आवश्यकता है । नेता की खोज में मतवारा फिरता है । मोक्ष-
धाम पहुंचना है कहां जाए ? दर्शनामृतके पिपासो ! तू चिन्ता
न कर । तू साधनों का टिकट लेकर यान में आया है । तुझे
पहुंचाने का उत्तर दातृत्व औरों का है । गाड़ी नियत स्थान
को जा रही है ।

वह देख ! सीटी बजी ! घटी हुई ! झण्डी हिली ! गाड़ी
मार्ग में है । कौनसा मार्ग ? वेद का । एक २ ऋचा को पढ़ ।
परमात्मा की धोतका है ।

कोई उत्सव है ? घरबार, गली, बाजार, नीचे, ऊपर, अन्दर, बाहर झगड़ियाँ ही झगड़ियाँ हैं। इनके संकेत को समझ और इनके पीछे जा। तारों की दीपमाला किस के स्वागत में है ? केवल आज नहीं, रोज़। प्रभात की छटा किस वैज्ञानिक का आविष्कार है ? चन्द्रकला और सूर्य्य प्रभा किस शिल्पी का शिल्प है ? समुद्र गला फाड़कर चिल्लाता है। बादल गरज कर घोषणा करते हैं। किस की ? जहाँ पत्नी पर न मोर ? पशु पक्ष न हिलाए। न कौओं की काएं, न पत्तों की साएं। वहाँ भी तो निःशब्द प्रकृति मौन-भाषा में स्वामी का स्मरण कराती है। तू न देखे और न सुने तो अपराध किस का ? देखने वाली आंख खोल। मौन-भाषा में नाद होता है। “रंगी के रंग”।

१२-उपस्थान मन्त्र [३]

ओं चित्रन्देवाना मुदगादनीकंचक्षुर्मित्रस्य
वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

अन्वयः—चित्रं ! देवानां (देवान्) उत् अगात् ! (स)
अनीकं (अस्ति) । मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः (अस्ति)
द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आप्रा (अस्ति) जगतः तस्थुषः च
सूर्य्यः आत्मा (अस्ति) । स्वाहा ।

(चित्रं) विचित्र (देवानां) प्रकाशमानों और दिव्य स्वभाव युक्तों में (उत्, अगात्) भलीप्रकार प्रगट (अनीकं) बल-स्वरूप (मित्रस्य) हितकारियों वा सूर्य का (वरुणस्य) श्रेष्ठ-पुरुषों वा जल का (अग्नेः) ज्ञानियों वा अग्नि का (चक्षुः) मार्ग-दर्शक वा द्रष्टा (द्यावा) प्रकाश-युक्त लोकों (पृथिवी) प्रकाश-शून्य विस्तृत लोकों (अन्तरिक्षं) आकाशमें (आप्रा) व्यापक (जगतः) चर अर्थात् चलनेवालों (च) और (तस्थुषः) न चलने वाले जड़ पदार्थों का (आत्मा) आत्मा और (सूर्यः) व्यापक है । (स्वाहा) यह वाणी अति-सुन्दर है अथवा वह कामना पूर्ण हुई ।

मुमुक्षु मोक्ष धाम में है । अभी देखा था उसे इच्छा थी परन्तु साधन-युक्त इच्छा शक्ति-शालिनी होती है । वही इच्छा सफलता में परिणत हुई ।

वेद-मार्ग निकल आया । संसार के एकर अणु ने झंडी का काम दिया । और पथिक महाशय वहां पहुंचे जहां जाना अभीष्ट था । उस जगह का अनुभव भी सुन लो ।

कहां वह प्रकृति-मय असित जगत् ! कहां आत्मिक प्रभा के कौतुक-मय चमत्कार ! वहां कलह, यहां शान्ति । वहां तम यहां सत । वहां वैर यहां प्रेम । मुमुक्षु चकित है । विवश मुख से निकलता है “चित्रं” ! और कोई वाक्य ही नहीं जिस में जो देखा है दिखाए ।

आज सकल संसार दिव्य है। क्योंकि दिव्य दृष्टिसे देखा गया। वस्तुतः में परम-देव की झलक ! अणुर में विभु ईश की चमक ! वसन्त ऋतु में हरे वृक्ष भी पीले दीखते हैं। हरे चश्मे से आकाश भी हरा, पृथिवी भी हरी, धूप भी हरी और छाया भी हरी। कल यही जल था, उस की उमड़ से काँपे जाते थे। यही अग्नि थी, उस की लपट से कलेजा थरता था। यही सूर्य था जिस की किरणें आग्नेय वाण थीं। आज दृष्टि के परिवर्तन से जल सौम्य है, अग्नि पावक और सूर्य ज्योतिः का पुंज। ब्रह्माण्ड ब्रह्म-मय है। व्यापक आकाश उस से व्याप्त है। दृढ़ पृथिवी उस से मुदृढ़ है। वही तारों की द्युति, वही चन्द्र सूर्य की ज्योति। चलतों में उस की गति, स्थितों में उस की स्थिति। वही “नेत्र” होकर अग्नि का मार्ग दर्शक, वही “रस” होकर वरुण (जल) का रस-वर्धक। और वही “तेज” होकर सूर्य का सविता वही, सर्व-वित् उपदेशकों का उपदेष्टा। अग्नि को कौन कहता है ‘उपर जा’ ? और जल को कौन सिखाता है “निम्न स्थल पर वह” ? वैज्ञानिक कहेगा, प्रकृति के निषय हैं। साधु ! वही तो नियमों का नियामक है।

हे वास्तविक तत्त्वसे भटकी हुई आंख उस परम-दृश्य को देख ? हे सांसारिक स्वरों पर मोहित-श्रोत्र ! उस परम-श्रुति को सुन ? हे अण्ड बण्ड बक कर वृथा चलनेवाली जिह्वा !

आत्म-नाश न कर, उस परम-पवित्र वाक्य “ ओ३म् ” का
 उच्चारण कर और पवित्र हो । कह ! कह ! फिर कह !
 फूलों में तेरी शोभा, कांटों में तेरा दर्शन ।
 बगियामें तुझको ढूं ढूं, या बन में खोजूं? भगवन्!

१३-उपस्थान मन्त्र (४)

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
 पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ५ शृणु-
 याम शरदः शतं प्रव्वाम शरदः शतमदीनाः
 स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

ऋ० अष्ट० ५ अ० ५ व० ११

अन्वयः—तत् चक्षुः देवहितं शुक्रं पुरस्तात् उत् चरत् ।
 शतं शरदः पश्येम, शतं शरदः जीवेम, शृणुयाम (च) प्रव-
 वाम (च) शतात् शरदः च भूयः (एवं स्यात्) ।

(तत्) वह (चक्षुः) सर्व-दृक् (देवहितं) देवों का
 हितकारी (पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व का अजन्मा निर्विकार (शुक्रं)
 पूर्ण-बल (उत् चरत्) विचरता था । उस को (पश्येम)
 देखें (शरदः शतं) सौ वर्ष अर्थात् बहुत काल तक । (शरदः

शतं) बहुत काल तक (जीवेम) जीवें। (शरदःशतं) बहुत काल (शृणुयाम) सुनें (शरदः शतं) बहुत काल तक (प्रव्रवाम) बोलें (शरदः शतं) बहुत काल तक (अदीनाः स्याम) हम स्वतन्त्र हों, अर्थात् किसी के दीन (मुहताज) न हों (च) और (शरदः शतात्) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी ऐसा ही हो।

परमात्माका “चक्षुः” तथा “देवहितं” इत्यादि होना पीछे दिखा चुके हैं। उपस्थान मन्त्र (१) में “उत्तरं” आया था, यहां “पुरस्तात्” आया है। इसका अर्थ है “जो सृष्टि से पूर्व हो और उसके पश्चात् रहे”। यों तो जीव भी अनादि और अनन्त है, एवं प्रकृति भी। परन्तु भेद यह है कि जहां यह दो रूपान्तरों में आते हैं, परमात्मा एक-रूप रहता है। जीव कभी बन्धन में कभी मुक्त, ब्रह्ममुक्त-स्वभाव होने से सदैव मुक्त। प्रकृति कभी कारण, कभी कार्य्य। परमात्मा सदैव कारण (निमित्त)

ऐसे शुद्ध बुद्ध सर्व-दृक् देवहित के दर्शन से कृतार्थ हो जीव की अभिलाषा है कि यह सुख, यह प्रियतमके मेल का आनन्द क्षणिक न हो। बहुत काल तक रहे। उस पूर्ण-प्रभा की द्युति आंखोंके लिए दीपक हो। उस सर्व-श्रोता की श्रुति श्रोत्र के लिए अमृत का सोत हो। जीवे तो उसी परम-प्राण के आधार पर, बोले तो उसी का पतित-यावन नाम। जो देखा जाए, वह जीवन में आए। जो सुना जाए, वह उपदेश बने।

आंखों में दृष्टि रहे, कानों में श्रुति रहे । मुख में वाक्, नासिका में प्राण हो । सौ के हों चाहे और भी अधिक के । बुद्धि में वृद्ध हों, शक्ति में युवा और सरलता में शिशु (बालक) ।

हे परम-देव ! कृपा करो ! कृपा करो ! हमारी प्रार्थना स्वीकृत हो । आप ही की वाणी आप ही की भेंट है । इस को न मानों, किस को मानोगे ?

ओ३म् ! ओ३म् ! ओ३म् !

१४-आचमन तीसरी बार

यहां शन्नोदेवी मन्त्र के साथ फिर आचमन करने की विधि है । या यूँ समझो कि जिस शान्ति की आदि से कामना होती रही, उसकी उपलब्धि और अनुभव का अब समय है ।

हम पाठकों के सन्मुख अपना एकवार का अनुभव रखते हैं । सम्भव है उस का कुछ अंश हमारे पाठकों के हृदय में आजाए और आचमन के प्रयोजन को वह भली प्रकार जें ।

मरी से पश्चिम की ओर कोई १॥ (डेढ़) मील की दूरी पर फेरूपल की बावली है । सड़क से दक्षिण को एक निम्न स्थान में जहां पहुंचने के लिए कोई फ़र्लाङ्ग भर नीचे उतरना पड़ता है, और मार्ग में छोटे बड़े अनेक वृक्ष तथा पौधे आते

हैं; यह बावली स्थित है। पथिक की दृष्टि यदि अकस्मात् पड़े भी तो नीचे खड़ा मनुष्य बहुत छोटा दीखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वहां, पार्थिव नहीं कोई और सृष्टि होगी। हम स्नानार्थ उस बावली पर गए, व्यायाम किया, नहाए, धोए और सन्ध्या के लिए एक पत्थर को आसन बनाया। पत्थर ठण्डा और स्वच्छ है। उस के दोनों डारे झरने का निर्मल पानी मधुर आलाप करता वहा जाता है। वायु शीतल और सुहावनी, धूप अति पवित्र और मनोहर। चारों ओर हरे चील के वृत्तों की गोलाकार पंक्तियां। उन का क्रम ऐसा कि मानो किसी कम्माण्डर ने अभी फालिन कराया है। मूल से कई फीट ऊपर तक नझे। फिर नोकीले तीली के आकार के पत्तों से ढके। पत्तों का घेरा भी पहिले चौड़ा फिर शनैः २ संकुचित होता गया है, यहां तक कि अन्त में एक नोक मात्र रह गई है। इस हरी पराकार से नीचे पहाड़ के ढलान पर सीढियों के रूपमें क्षेत्र बोए हुए। सूर्य की किरणें पानी के कणों में विचलित होती हुई सातों रङ्गों के विचित्र सम्मेलन से तल पर के घास को मखमल और कमखाव की चमक देती हैं। उस पर कोई बादल का टुकड़ा अटका हुआ अति-मृदम मलमल ओढ़े बालक की भान्ति घुटने टेक २ कर पर्वत पर चढ़ा जाता है।

प्रकृति-देवी के बालक ! तू बहुत प्रसन्न है। आ पाठक!

बालक सा सरल चित्त बना और मेरे साथ सन्ध्या कर ।

“शमोरभिस्रवन्तुनः” । अब ज्ञात हुआ इस में क्या रहस्य है । वायु की चपेट आई और शरीर को शान्ति दे गई । पत्नी चहचहाया, कान ने आनन्द पाया । वृत्तों पर दृष्टि पड़ी और आंखों को अंजन मिला । जल शान्ति-मय है, वायु शान्ति-मय है, पृथिवी शान्ति-मय है, मैं शान्ति-मय हूं । मुख क्या, समस्त काया आचमन कर रही है और तृप्त नहीं होती । रोम २ से शान्ति-देह के अन्दर चूती है । आत्मा ने द्वार खोल दिए, परम-शांति का प्रवाह हुआ ।

जल जड़ है, इसको आत्मा से क्या काम? वायु भूत है, पुरुष इस से भी निःसङ्ग । वृत्त भिन्नी के बोते ! पत्नी अबोध ! आनन्द कहां से चूता है ? वह शान्ति का स्रोत, सकल आनन्द का निकास, जड़ चेतनका आत्मा, घट २ में व्यापक, आत्मा की दिव्य-चक्षु द्वारा देखा गया । कह वाणी ! उसी को कह ! “ शन्नोदेवीरभिष्ठय आपोभवन्तु पीतये ” । अरी शान्ति में निमग्न ! कुछ कहने की शक्ति शेष है ?

१५--‘गुरुमन्त्र’ “दूसरी वार”

आरम्भ में गुरु-मन्त्र से शिखा बन्धन किया था । जैसे

मार्जन-मन्त्रों में शिर से आरंभ करके शिर ही पर अन्त करते हैं, इसी प्रकार यहां भी जहां से आरम्भ किया था वहीं फिर पहुंच जाते हैं । अभिप्राय यह कि सारा चक्र समाप्त हो चुका है । पहिली बार गायत्री द्वारा उपस्थान का आदर्श सामने रखा जाता है और अन्य मन्त्रों से उसकी प्राप्ति के साधन प्रयुक्त किए जाते हैं । जब यम नियम तो क्या उपस्थान भी हो चुका तब वस्तुतः अनुभव होता है कि हम “सवितुर्देवस्यभर्गः” धारण कर रहे हैं । तीन लोकों में से गुजर चुके, तीनों वेदों के मंत्रों का उच्चारण किया, तीन प्रकार का प्राणायाम किया । कसर कौनसी रही ? “भूर्भुवः स्वः” अब सार्थ है । “भर्गः” अपने अन्दर लेने का फल क्या ? यही कि आत्मा में नई तथा उत्तम शक्ति का समावेश हुआ । चुम्बक से लगा हुआ लोहा कुछ समय चुम्बक का गुण धारण करता है । इसी प्रकार परमात्मा के सामीप्य से आत्मा भी वह गुण लेता है जो “आपः देवी” में हैं । आगामी काल के लिए उसे सन्मार्ग में प्रेरणा होती है ।

१६--नमस्कार मन्त्रः

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च ।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च । नमः शिवाय च
शिवतराय च ॥

यजु० अ० १६ मं० ४१

(शम्भवाय) कल्याण-स्वरूप (च) और (मयोभवाय)
 सुख-स्वरूप (शङ्कराय) कल्याणकारी (च) और (मय-
 स्कराय) सुख-कारी (शिवाय) आनन्द-दाता (च) और
 (शिवतराय) अति आनन्द दाता ओ३म के लिए (नमः६)
 अनेक बार प्रणाम हो ।

समाधि से उठने से पूर्व परमात्मा को नमस्कार करते हैं ।
 यह शिष्टचार भी है, भक्ति भी । परमात्मा शम्भु है, शङ्कर है,
 शिव है अर्थात् प्रथम तो वह स्वयं शान्ति का भण्डार है ।
 फिर जो उस की शरण लेते हैं, उन्हें त्रिविध तापों से शान्त
 करता है । फिर positive सुख देता है । कैसी उत्तम शिन्ता
 मिली ! यदि शङ्कर बनना चाहो तो पहले शम्भु बनो । जो
 स्वयं क्रुद्ध हैं वे दूसरों का क्रुद्ध नहीं हर सकते, जो स्वयं
 भयभीत हैं वे औरों के लिए अभय-प्रदान क्या करेंगे । पहिले
 आप शांत बनो फिर औरों को शांति दो । परमात्मा व्रत-पति
 है, उसके संसर्ग का फल यही है कि हम व्रतों से सखलित न हों ।
 शान्तिमय पितः ! नमस्ते !! हमारी बार २ नमस्ते !!!

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करो ।



मनुष्य जन्म को सफल करने वाली नई पुस्तकें ।

(जिनका स्वाध्याय प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिये आवश्यक है)

ईश उपनिषद् का स्वाध्याय—इस अद्वितीय पुस्तक को वेदों के प्रसिद्ध विद्वान पं० सातवलेकर ने रचा है । इस एक पुस्तक के स्वाध्याय से पाठकों को उपनिषदों और वेदों का बहुत सा सार विदित हो जायगा । भाषा बड़ी सरल है प्रत्येक स्त्री व पुरुष बड़ी सरलता से पुस्तक को स्वयं ही पढ़ सकता है । मूल्य ॥८०॥

स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की सन्ध्या-योग—सन्ध्या पर यह एक अपूर्व पुस्तक है । मूल्य हिन्दी ॥१॥ और उर्दू ॥२॥

स्वामी सत्यानन्द जी की सत्य उपदेश-माला—भक्ति मार्ग के लिये एक शीपक है । मूल्य ॥१॥

स्वामी सर्वदानन्द जी का आनन्द संग्रह—यह मोक्ष प्राप्ति के साधन बतलाने वाली शिखा है । उर्दू ॥८०॥ हिन्दी ॥१॥

मोतियों का हार चित्र सहित—लाला हंसराज जी कृत मूल्य ॥८०॥

फूलों का गुच्छा—स्वामी सत्यानन्द जी एम. ए. कृत मूल्य ॥८०॥

संस्कृत स्वयं शिक्षक—इस पुस्तक से प्रत्येक स्त्री व पुरुष बिना किसी की सहायता से संस्कृत सीख सकते हैं । पञ्चम वेबस्ट बुक कम्पेनी ने इसकी सिफारिश की है । प्रथम भाग ॥१॥ दूसरा भाग ॥२॥

अग्नि जीवन कथा—सर्वज्ञानेश्वर जी का जीवन चरित्र मनोरंजक कहानियों में उर्दू ॥१॥ हिन्दी ॥२॥

काशी-यात्रा—स्त्री शिक्षा के लिये यह एक अपूर्व पुस्तक है । मूल्य ॥२॥

पुष्पाञ्जलि—ठाकुर नरसिंह पं० अमीचन्द और महाशय । मेरठारीलाल के मनोहर भजनों का संग्रह मूल्य ॥२॥

भजन अमृत—आर्य समाज के सामाहिक सत्सङ्ग के लिये भजन ।

वैदिक सभ्यता में धन का स्थान—मूल्य ॥१॥

इसके अतिरिक्त हर प्रकार की आर्य सामाजिक पुस्तकें हम से मिल सकती हैं ।

राजपाल-प्रबन्धकर्त्ता आर्य पुस्तकालय अनामकजी, लाहौर ।



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित
है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै
नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का
अर्थदण्ड लगेगा।

7 DEC 1964

DR 36/26

1 1 OCT 1988

DD-53/26

१०००० ए.५६।

Entered Database

Signature with Date

1871

1871

ASG

22

92.2

92
22

THE
LIBRARY
OF THE
MUSEUM
OF
ART AND
ARCHAEOLOGY
OF THE
UNIVERSITY OF
CAMBRIDGE

74
22